प्रथमः अध्याय

१.१ शोधपरिचय

प्रस्तुत शोधपत्र में जैनेन्द्र के उपन्यास **त्यागपत्र** में संवेदना और चेतना खोजने की कोशिश की गई है । त्यागपत्र में वर्णित परिस्थितियों को विश्लेषित करते हुए साथ ही जैनेन्द्र की अन्य रचनाओं का अध्ययन कर उक्त तथ्य को खोजने की कोशिश की गई है ।

१.२ शोध प्रयोजन

प्रस्तुत शोधपत्र "जैनेन्द्र रचित त्यागपत्र में निहित संवेदना और चेतना" चतुर्थ सत्र के अंतिम पत्र ५७० के लिए तैयार किया गया है । शोध का आधार सम्बन्धित पुस्तक का अध्ययन, पुस्तकालय और गुगल पुस्तक है ।

१.३ समस्या कथन

जैनेन्द्र कुमार मनोविश्लेषणात्मक लेखन में हिन्दी सहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । इनके उपन्याास मनोवैज्ञानिक एवं कहानियाँ चिन्तनपरक है । जैनेन्द्र कुमार प्रेमचंद युग के महत्त्वपूर्ण कथाकार माने जाते हैं । उनकी प्रतिभा को प्रेमचंद ने भरपूर मान दिया । वे समकालीन दौर में प्रेमचंद के निकटतम सहयात्रियों में से एक थे मगर दोनों का व्यक्तित्व जुदा था । प्रेमचंद लगातार विकास करते हुए अंततः महाजनी सभ्यता के घिनौने चेहरे से पर्दा हटाने में पूरी शक्ति लगाते हुए 'कफ़न' जैसी कहानी और किसान से मज़दूर बनकर रह गए । होरी के जीवन की महागाथा गोदान लिखकर विदा हुए । जैनेन्द्र ने जवानी के दिनों में जिस वैचारिक पीठिका पर खड़े होकर रचनाओं का सृजन किया जीवन भर उसी से टिके रहकर मनोविज्ञान, धर्म, ईश्वर, इहलोक, परलोक पर गहन चिंतन करते रहे । समय और हम उनकी वैचारिक किताब है । प्रेमचंद के अंतिम दिनों में जैनेन्द्र ने अपनी आस्था पर जोर देते हुए उनसे पूछा था कि अब ईश्वर के बारे में क्या सोचते हैं । प्रेमचंद ने दुनिया से विदाई के अवसर पर भी तब जवाब दिया था कि इस बदहाल दुनिया में ईश्वर है ऐसा तो मुझे भी नहीं लगता । वे अंतिम समय में भी अपनी वैचारिक दृढ़ता बरकरार रख सके यह देखकर जैनेन्द्र बेहद प्रभावित हुए । वामपंथी विचारधारा से जुड़े लेखकों के वर्चस्व को महसूस करते हुए जैनेन्द्र जी कलावाद का झंडा बुलंद करते हुए

अपनी ठसक के साथ समकालीन साहित्यिक परिदृश्य पर अलग नजर आते थे । गहरी मित्रता के बावजूद प्रेमचंद और जैनेन्द्र एक दूसरे के विचारों में भिन्नता का भरपूर सम्मान करते रहे और साथ साथ चले । जैनेन्द्र की रचनाओं में भावनाओं का अद्‌भुत सम्मिश्रण है । प्रस्तुत शोधपत्र में उनके इसी भावनाओं के सागर से त्यागपत्र को चुन कर उसमें संवेदना और चेतना की तलाश की गई है ।

१.४ शोध कार्य का उद्देश्य

इस शोधकार्य के अर्न्तगत विषय वस्तुसे सम्बन्धित निम्नलिखित उद्देशयों को उजागर किया गया है –

क. जैनेन्द्र का व्यक्तित्व

ख. जैनेन्द्र का रचना संसार

ग. जैनेन्द्र रचित त्यागपत्र में निहित संवेदना और चेतना की तलाश

घ.जैनेन्द्र की भाषा, कथ्य शिल्प, पात्र परिचय एवं नारी मनोविज्ञान आदि ।

१.५ पूर्व कार्य की समीक्षा

जैनेन्द्र हिन्दी साहित्य के शिखरपुरुष हैं । इसलिए स्वाभाविक तौर पर इनकी रचनाओं पर पर्याप्त शोध कार्य हुए हैं । इसलिए एम ए की परीक्षा के लिए तैयार यह शोधपत्र कोई क्रांतिपूर्ण कार्य है यह कहने की धृष्टता मैं नहीं कर सकती । यह महज एक कोशिश है जो उधार पर आधारित है ।

१.६ शोध कार्य का औचित्य

जैनेन्द्र के कथा साहित्य की भावभूमि इतनी विस्तृत है कि इस पर चाहे जितना भी कार्य किया जाय वह कम ही होगा । शोध की अनगिनत संभावनाएँ आपकी रचनाओं में व्याप्त है जिसपर शोधार्थी शोधकार्य कर सकते हैं । इस लिहाजन मेरा यह शोधपत्र उसी दिशा में एक प्रयास है जो अनुचित नहीं है ।

१.७ अध्ययन की सीमा

इस शोध कार्य में कथाकार के एक उपन्यास त्यागपत्र को विषय बनाया गया है । इसलिए स्वाभाविक रुप से त्यागपत्र पर विस्तार से ध्यान दिया गया है । किन्तु इसके अतिरिक्त प्रस्तुत शोधपत्र में आपकी अन्य रचनाओं का भी साधारण अध्ययन और आपके जीवन से जुड़े अन्य पहलुओं पर भी ध्यान दिया गया है ।

१.८ शोधविधि

प्रस्तुत शोधपत्र में विषय से सम्बन्धित पुस्तकों के अध्ययन के अलावा निर्देशक के अनुभवों तथा गुगल पुस्तक एवं विकिपीडिया की सहायता ली गई है । साथ ही पुस्तकालय का भरपूर उपयोग किया गया है ।

१.९ शोधपत्र की रुपरेखा

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय में शोध से सम्बन्धित सभी आवश्यक उपकरणों की चर्चा की गई है ।

द्वितीय अध्याय

इस अध्याय में जैनेन्द्र के व्यक्तित्व और जैनेन्द्र के रचना संसार का अवलोकन किया गया है ।

तृतीय अध्याय

जैनेन्द्र की रचनाओं का मनोवैज्ञानिक स्तर पर विश्लेषण के साथ ही जैनेन्द्र की रचनाओं में स्त्री मनोविज्ञान और उपस्थिति को विश्लेषण का विषय बनाया गया है ।

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय में जैनेन्द्र रचित त्यागपत्र में निहित संवेदना और शिल्प जो शोध का विषय है उस पर विशद चर्चा की गई है । साथ ही कथानक, शीर्षक की सार्थकता, कथा प्रस्तुत

करने की नयी शैली, संवेदना का स्वरूप, त्यागपत्र की नायिका मृणाल और त्यागपत्र में निहित चेतना का अध्ययन किया गया है ।

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय में शोध निष्कर्ष के साथ ही शोधपत्र का उपसंहार और सन्दर्भ पुस्तक सूची के साथ समापन किया गया है ।

द्वितीय : अध्याय

२.१ जैनेन्द्र का व्यक्तित्व

जैनेन्द्र कुमार

(सन् 1905-1988 ई.)

जीवन परिचय :

जैनेन्द्र कुमार बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं । इन्होंने उपन्यास, कहानी, निबन्ध तथा संस्मरण आदि अनके गद्य विधाओं पर लेखनी चलाई है । इनका जन्म 2 जनवरी 1905 ई. को अलीगढ़ जनपद के कौड़ियागंज नामक कस्बे में हुआ था । इनके पिता का नाम श्री प्यारेलाल और माता का नाम श्रीमती रमादेवी था । इनका बचपन का नाम आनन्दीलाल था, लेकिन इन्होंने अपना नाम बदलकर जैनेन्द्र कुमार रख लिया था । हिस्तारनापुर के जैन गुरुकुल 'ऋषिबह्मचर्याश्रम' में इनकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई । फिर इन्होंने पंजाब से हाई स्कूल और वाराणसी के सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल से इण्टरमीडिएट की परीक्षाएं उत्तीर्ण की तथा उच्च् शिक्षा हेतु बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया । लेकिन सन् 1921 ई. के असहयोग आन्दो लन में भाग लेने के कारण इनकी शिक्षा का क्रम मध्य में ही टूट गया । इन्हों ने स्वाध्याय से ही हिन्दी् का गहन एवं विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया । आन्दोलनों में भाग लेने के कारण वे कई बार कारागार भी गये । सन् 1928-29 ई. से इन्होंने साहित्य क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ् किया । 24 दिसम्बबर 1988 ई. को इनका देहावसान हो गया । साहित्य की प्रचलित धाराओं के बरअक्स अपनी एक जुदा राह बनाने वाले जैनेन्द्र को गांधी दर्शन के प्रवक्ता, लेखक के रूप में याद किया जाता है । गांधीवादी चिंतक, मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य के सूत्रधार, साहित्यकार जैनेन्द्र को उनके विशिष्ट दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक साहित्य के लिये भी जाना जाता है । हिन्दू रहस्यवाद, जैन दर्शन से प्रभावित जैनेन्द्र का सम्पूर्ण साहित्य सृजन प्रक्रिया की विलक्षणता और सुनियोजित संश्लिष्टता का अनन्यतम उदाहरण है । जैनेन्द्र के बारे में अज्ञेय ने कहा था आज के हिन्दी के आख्यानकारों और विशेषत: कहानीकारों में सबसे अधिक टेक्निकल जैनेन्द्र हैं । टेक्नीक उनकी प्रत्येक कहानी

की और सभी उपन्यासों की आधारशिला है । स्त्री विमर्श के प्रबल हिमायती जैनेन्द्र ने कहानी के अंदर प्रेम को संभव किया ।

1905 में अलीगढ के कौडियागंज गांव में जन्मे आनंदी लाल ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि वे आगे चलकर साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार बनेंगे । चार माह की उम्र में ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया । मां और मामा भगवानदीन ने उन्हें पाला पोसा । बहरहाल बचपन अभावग्रस्त, संघर्षमय बीता और युवावस्था तक आते आते नौकरी जिंदगी का अहम् मकसद बन गयी । दोस्त के बुलावे पर नौकरी के लिए कलकत्ता पहुँचे मगर वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी ।

जैनेन्द्र लेखक कैसे बने इसकी दास्तान भी कम दिलचस्प नहीं है । गर्दिश के दिनों में अपने दोस्त के यहाँ बैठे थे । दोस्त की बीवी को लिखने का शौक था और वह यदाकदा पत्र पत्रिकाओं में छपती रहती थीं । जैनेन्द्र से लिखने पर बहस हुई तो जैनेन्द्र लिखने की ठान बैठे । खेल कहानी लिखी और विशाल भारत में छपने के लिए भेज दीं । कहानी छपी और चार रुपये मनीआर्डर बतौर पारिश्रमिक जैनेन्द्र के पास आए ।

कहानी अनुभव और शिल्प में जैनेन्द्र इस बाबत लिखते हैं “मनीआर्डर क्या आया मेरे आगे से तिलिस्म खुल गया इन 23-24 वर्षो को दुनिया में बिताकर मैं क्या तनिक उस द्वार की टोह पा सका था कि लिखने से रुपये का आवागमन होता है । रुपया मेरे आगे फरिश्ते की मांनिद था । जिसका नाम किस लोक का है । अवश्य वह इस लोक का तो नहीं है । वह अतिथि की भांति मेरे खेल के परिणामस्वरूप मेरे घर आ पधारा तो यकायक मैं अभिभूत हो रहा । मेरी माँ को भी कम विस्मय नहीं हुआ, तो बेटे के निकम्मेपन की भी कुछ कीमत है । माँ से ज्यादा बेटा अपने निकम्मेपन को जानता था । पर विशाल भारत के मनीआर्डर से मालूम हुआ कि आदमी अपने को नहीं जान सकता ।”

कहानी खेल से उनके लेखन का सिलसिला जो प्रारंभ हुआ तो 24 साल की उम्र तक उपन्यास परख आ गया । परख को साहित्य अकादमी का पांच सौ रुपये का पुरस्कार मिला । बहरहाल इसके बाद उन्होंने पीछे मुडकर नहीं देखा । जिंदगी की यही घटनाएं वजहें थीं कि जैनेन्द्र नियतिवादी, ईश्वरवादी हो गए । ईश्वर पर उनका भरोसा बढता चला गया ।

असहयोग आन्दोलन के दौरान पढाई छोड आन्दोलन में हिस्सा लेने वाले जैनेन्द्र की जिंदगी और साहित्य पर महात्मा गांधी का जबर्दस्त प्रभाव था । जैनेन्द्र खुद कहते हैं गांधी जीवन मेरे समक्ष सत्य शोध का उत्तम उदाहरण रहा अध्यात्म, दर्शन, नैतिकता और अपने साहित्य द्वारा सत्य की खोज जैनेन्द्र के विपुल साहित्य के विचार बिन्दु हैं । उनका पूरा रचना संसार इन्हीं विचार बिन्दुओं के इर्दगिर्द घूमता है । उपन्यास : सुनीता, त्यागपत्र, सुखदा, विवर्त, कल्याणी कहानियां : नीलम देश की राजकन्या, जान्ह्वी, अविज्ञान, पत्नी, ध्रुवतारा आदि रचनाएं इन्हीं विचारों में रची पगी नजर आती हैं ।

नतीजतन उन पर कई तरह के इल्जाम भी लगे जिनमें प्रमुख हैं : जैनेन्द्र का दर्शन समाज व जीवन से पलायन का दर्शन, उनके उपन्यास प्रहेलिका मात्र हैं, वे यथार्थ से भागते हैं, जैनेन्द्र दार्शनिकता का पोज भर भरते हैं और नारी पात्रों को अनैतिकता में धकेलने के लिए हमेशा आध्यात्मिकता का सहारा लेते हैं आदि । अपने समय में साहित्यिक जगत की कटु आलोचनाओं को सहने वाले जैनेन्द्र ने कई बार तंग आ सक्रिय साहित्य से संन्यास भी लिया । उपन्यास कल्याणी के बाद तो उन्होंने 14 साल एकांतवास लिया । मगर उनकी वापसी हर बार उतने ही जोरदार तरीके से हुई । उस दौर की चर्चित पत्रिकाएं धर्मयुग तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान ने उनके उपन्यास : सुखदा और विवर्त को किश्तवार छापा । वहीं माया ने दस कहानियों के लिए उन्हें 2 हजार अग्रिम राशि देकर अनुबंधित किया जो उस समय लेखकों को मिलने वाली अधिकतम मानदेय 60 रुपये से कहीं ज्यादा था । जितना जैनेन्द्र से जुडा यह किस्सा जतलाता है कि वे कामयाबी के किस शिखर पर विराजमान थे ।

ख्याति और विवादों का चोली दामन का साथ है । जैनेन्द्र भी इन सबसे अछूते नहीं रहे । उपन्यास, कहानी के अलावा आपके वैचारिक निबंध, आलेख पत्रपत्रिकाओं में छपते रहते थे जो खासे चर्चित थे । धर्मयुग में छपने वाले कालम में वे नियमित लिखते थे । अपने कालम के जरिए उन्होंने सामाजिक मान्यताओं तथा रूढ परम्पराओं पर लगातार प्रहार किए । चुनांचे धर्मयुग के संपादक ने उनके कालम को एक बार बीच में से ही स्थगित करते हुए कहा था कि कुछ खण्डों में आपने इतने विद्रोही (सामाजिक मान्यताओं) भावों का प्रतिपादन कर दिया है कि मान्यताओं के प्रति श्रद्धालु व्यक्तियों के मन में धर्मयुग के लिए तीव्र घृणा जाग गई है । धर्मयुग के पाठकों में से अधिकांश व्यक्ति परम्परा प्रेमी हैं उन्हें आपकी सर्वथा

मौलिक परम्पराएं अच्छी नहीं लगीं । अत: यही है कि इत:त: को कुछ काल के लिए स्थगित कर दें । इन कालमों में जो भी जाएगा हमारे पारम्परिक पाठकों की संशयात्मक दृष्टि का शिकार हो जाएगा ।

समय और हम, साहित्य का श्रेय और प्रेय, प्रश्न और प्रश्न, सोच विचार, राष्ट्र और राज्य, काम प्रेम और परिवार, अकाल पुरुष गांधी आदि निबंध जैनेन्द्र की दार्शनिकता और नितांत मौलिक पदस्थापनाओं के कारण जाने पहचाने गए । अपने अधिकांश साहित्य का लेखन डिक्टेशन से कराने वाले जैनेन्द्र के लेखन पर महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का अत्यधिक प्रभाव था । जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण उनके उपन्यास सुनीता और सुखदा हैं जो टैगोर के उपन्यास घरे बाहरे से प्रेरित हैं । परख और सुनीता को पढ उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द ने एक बार कहा था जैनेन्द्र में गोर्की और शरतचन्द्र चटर्जी दोनों एक साथ देखने को मिलते हैं । बहरहाल बांग्ला साहित्यकार शरतचन्द्र के उपन्यासों की ही तरह उनके तकरीबन सभी उपन्यासों में स्त्री चरित्र पूरी दृढता के साथ नजर आते हैं । त्यागपत्र की मृणाल और सुनीता का केन्द्रीय चरित्र सुनीता उपन्यास में अपनी मौजूदगी का अहसास प्रखरता से कराता है । हालांकि उनके स्त्री चरित्र आत्मा की ट्रेजेडी और आत्म प्रपीढन से ग्रसित नजर आते हैं ।

दरअसल जैनेन्द्र ने मानवीय दुनिया की अपेक्षा आत्मिक दुनिया पर ज्यादा लिखा वे यथार्थ की जगह विचारों की बात ज्यादा करते हैं जो उन्हें रूसी साहित्यकार दास्तोएव्सकी के नजदीक रखता है । एक दौर वह था जब उपन्यास, कहानियों में यशपाल और जैनेन्द्र द्वारा नारी के बोल्ड चित्रण से उनकी साड़ीजम्पर उतारवाद का प्रवर्तक भी कहा गया तथा उन पर साहित्य में नैतिकता की गिरावट और अश्लीलता के आरोप मढे गए, अपने ऊपर लगे इन आरोपों का जवाब जैनेन्द्र ने अपने निबंधों के जरिए ही दिया । अश्लीलता यदि है तो वस्तु में नहीं व्यक्ति में है, असल में नैतिकता की दुहाई देने वाले लोग वे ही हैं जो सुविधा प्राप्त हैं, वे अपने भोग और आराम को बचाये रखने के लिए नीतिवादिता से अपनी रक्षा में चारों ओर घेरा डालते हैं अंग्रेजी में एक शब्द है कंजरवेटिव नैतिकता की दुहाई ऐसे ही लोग देते हैं ।

बहरहाल अश्लीलता नैतिकता के यह सवाल आज भी उसी तरह विद्यमान हैं जिनके जवाब हमें जैनेन्द्र की नुक्ता-ए-नजर में देखने को मिलते हैं । अपनी जिंदगी में उच्च आदर्शो को

ओढने वाले सादगी-करूणा की प्रतिमूर्ति जैनेन्द्र सही मायने में सत्यान्वेषी थे जिनके लिए अपनी आत्मा की आवाज सर्वोपरि थी और जिसका पालन उन्होंने मरते दम तक किया ।

२.२ जैनेन्द्र का रचना संसार

इनकी पहली कहानी 'खेल' सन् 1928 ई. में 'विशाल भारत' में छपी थी । इनके प्रथम उपन्योास 'परख' पर साहित्यम अकादमी का पुरस्कार प्रदान किया गया था । इन्होंने अपनी रचनाओं में कला, दर्शन, मानेविज्ञान, समाज, राष्ट्र मानवता आदि विषयों पर लेखनी चलाई है । इनके अनेक निबन्ध संग्रह भी प्रकाशित हुए है । इनके निबन्ध चिन्तानप्रधान एवं विचारप्रधान हैं ।

जैनेन्द्र जी की प्रमुख कृतियाँ हैं :

कहानी संग्रह : फाँसी, एक रात, पाजेब, स्पर्धा, वातायन, नीलम देश की राजकन्या, धुवयात्रा, दो चिड़ियाँ, जयसन्धि । इनकी कहानियाँ 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' नाम से दस भागों में संग्रहीत हैं ।

उपन्यास : सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, परख, तपोभूमि, जयवर्द्धन, विवर्त, सुखदा, मुक्तिबोध

निबन्ध संग्रह : प्रस्तुत प्रश्न, पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेय, जड़ की बात, मन्थन, गाँधीनीति, काम, प्रेम, और परिवार , सोच विचार, विचार वल्लरी

संस्मरण : ये और वे

अनुवाद : मन्दाकिनी, पाप और प्रकाश(नाटक), प्रेम में भगवान(कहानी(संग्रह)

सम्पादन : सूक्ति संचयन

भाषा शैली :

प्रमुख रूप से जैनेन्द्र की भाषा के दो रूप दिखाई देते हैं : भाषा का सरल, सुबोध रूप तथा संस्कृीतनिष्ठ् भाषा रूप । इन्होंने अपनी भाषा में मुहावरों और कहावतों का सजीव प्रयोग किया है । भावों को भलीभांति अभिव्यक्त करने की क्षमता इनकी भाषा में सहज रूप से

विद्यमान है । इनकी शैली अनेक रूपधारिणी है । प्रायः प्रत्येक रचना में इसका नया रूप है । इसमें व्यंग्य, नाटकीयता ओर रोचकता की प्रधानता है । सामान्य रूप से इनके कथासाहित्य में व्याख्याात्मक और विचारात्मक शैली का प्रयोग हुआ है ।

जैनेन्द्र कुमार मनोविश्लेषणात्मक लेखन में हिन्दी सहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । इनके उपन्याास मनोवैज्ञानिक एवं कहानियाँ चिन्तनपरक है । जैनेन्द्र कुमार प्रेमचंद युग के महत्त्वपूर्ण कथाकार माने जाते हैं । उनकी प्रतिभा को प्रेमचंद ने भरपूर मान दिया । वे समकालीन दौर में प्रेमचंद के निकटतम सहयात्रियों में से एक थे मगर दोनों का व्यक्तित्व जुदा था । प्रेमचंद लगातार विकास करते हुए अंततः महाजनी सभ्यता के घिनौने चेहरे से पर्दा हटाने में पूरी शक्ति लगाते हुए 'कफ़न' जैसी कहानी और किसान से मज़दूर बनकर रह गए । होरी के जीवन की महागाथा गोदान लिखकर विदा हुए । जैनेन्द्र ने जवानी के दिनों में जिस वैचारिक पीठिका पर खड़े होकर रचनाओं का सृजन किया जीवन भर उसी से टिके रहकर मनोविज्ञान, धर्म, ईश्वर, इहलोक, परलोक पर गहन चिंतन करते रहे । समय और हम उनकी वैचारिक किताब है । प्रेमचंद के अंतिम दिनों में जैनेन्द्र ने अपनी आस्था पर जोर देते हुए उनसे पूछा था कि अब ईश्वर के बारे में क्या सोचते हैं । प्रेमचंद ने दुनिया से विदाई के अवसर पर भी तब जवाब दिया था कि इस बदहाल दुनिया में ईश्वर है ऐसा तो मुझे भी नहीं लगता । वे अंतिम समय में भी अपनी वैचारिक दृढ़ता बरकरार रख सके यह देखकर जैनेन्द्र बेहद प्रभावित हुए । वामपंथी विचारधारा से जुड़े लेखकों के वर्चस्व को महसूस करते हुए जैनेन्द्र जी कलावाद का झंडा बुलंद करते हुए अपनी ठसक के साथ समकालीन साहित्यिक परिदृश्य पर अलग नजर आते थे । गहरी मित्रता के बावजूद प्रेमचंद और जैनेन्द्र एक दूसरे के विचारों में भिन्नता का भरपूर सम्मान करते रहे और साथ साथ चले ।

हिन्दी के आलोचक प्रो. नामवर सिंह ने कहा है कि विश्व साहित्य में भारतीय कहानियों का अपना मौलिक चरित्र है और विश्व साहित्य में जब कभी भारतीय कहानियों की बात होगी तो प्रेमचंद के साथ जैनेन्द्र को जरूर याद किया जाएगा । उन्होंने जैनेन्द्र को याद करते हुए कहा कि "नई कहानी से जुड़े लोगों ने उनपर बड़े आरोप लगाए । एक अधिवेशन में कोलकाता बुलाकर खूब खरीखोटी सुनाई लेकिन जैनेन्द्र जरा भी उत्तेजित नहीं हुए । आज ऐसे कम साहित्यकार हैं जो अपनी आलोचनाओं को इतनी सहजता से सुनते हैं ।" उन्होंने

कहा कि वह किस्सागोई के कथाकार नहीं थे और न ही उनकी कहानियां घटना प्रधान होती थी । वह तो प्रतिक्रियावादी थे । इस मौके पर उन्होंने जैनेन्द्र की 'खेल' और 'नीलम देश की राजकन्या' नामक कहानियों की याद दिलाई । जैनेन्द्र के साथ लंबे समय तक रहे प्रदीप कुमार ने कहा, "वह कहानी किसी भी पंक्ति से शुरू कर देते थे । कहते थे(तुम्हीं पहली पंक्ति कह दो! वह कबीर के भक्त थे और हमेशा कबीर के दोहे गाते रहते थे । कठिन परिस्थितियों में भी सरकार से सहयता की उम्मीद नहीं रखते थे और न ही उसे स्वीकारते थे ।" कवि अशोक वाजपेयी ने कहा, "सत्ता के गलियारों में गहरी पैठ रखने वालों से वह बराबरी का संवाद करते थे और स्पष्टत: अपनी बात कहते थे । वह मानते थे कि भाषा हो तो शृंगारहीन हो । उन्हें शब्द के संकोच का कथाकार कहा जा सकता है ।"

सम्मान और पुरस्कार

हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार,1929 में 'परख' (उपन्यास) के लिए

भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय पुरस्कार, 1952 में 'प्रेम में भगवान' (अनुवाद) के लिए

1966 में साहित्य अकादमी पुरस्कार 'मुक्तिबोध' (लघु उपन्यास) के लिए

पद्म भूषण, 1971

साहित्य अकादमी फैलोशिप, 1974

हस्तीमल डालमिया पुरस्कार (नई दिल्ली)

उत्तर प्रदेश राज्य सरकार समय और हम(1970)

उत्तर प्रदेश सरकार का शिखर सम्मान 'भारत भारती'

मानद डी. लिट् (दिल्ली विश्वविद्यालय, 1973, आगरा विश्वविद्यालय,1974)

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (साहित्य वाचस्पति(1973)

विद्या वाचस्पति (उपाधि: गुरुकुल कांगड़ी)

साहित्य अकादमी की प्राथमिक सदस्यता

प्रथम राष्ट्रीय यूनेस्को की सदस्यता

भारतीय लेखक परिषद् की अध्यक्षता

दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व

24 दिसंबर 1988 को उनका निधन हो गया

तृतीयः अध्याय

३.१ जैनेन्द्र की रचना मनोवैज्ञानिक स्तर पर

किसी व्यक्ति का जो कुछ सबसे अपना होता है, वह है उसका अपना व्यक्तित्व । व्यक्तित्व ही मनुष्य में एक व्यक्ति होने का बोध जागृत करता है । सामान्यतया, व्यक्तित्व से आशय उस व्यक्ति विशेष के भौतिक आकार प्रकार, रहन सहन, वेश भूषा आदि से समझा जाता है, परन्तु दर्शनशास्त्र में इसकी परिभाषा वृहद् है । दर्शनशास्त्र के अनुसार :

Personality can be defined as a dynamic and organized set of characteristics possessed by a person that uniquely influences his or her cognitions, motivations, and behaviors in various situations 1

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्वतः स्पष्ट है की व्यक्तित्व की परिधि में न मात्र व्यक्ति का बाह्य वरन् अंतर्मन भी आता है । व्यक्ति मन तथा उससे निर्मित व्यक्तित्व के मूल में तीन महत्त्वपूर्ण उपादान होते हैं यथानाम(The id, The ego और The superego । यह id बाह्य परिवेश से अचेत अतृप्त कामनाओं की शीघ्रातिशीघ्र परितुष्टि चाहता है । भनय id की उन इच्छाओं को पहले आवश्यकता के आलोक में तदुपरांत बाह्य जगत् के यथार्थ के प्रकाश में देखता है । अंततः superego ego पर नैतिकता तथा सामाजिक मर्यादाओं को अंतर्निविष्ट कर विवश करता है कि id की कामना न मात्र वास्तविक हो अपितु नैतिक भी हो । यह superego ही व्यक्तित्व के विकास एवं पोषण पर नियंत्रण रखता है । और इस तरह पैतृक संस्कार और सामजिक आदर्श की ही अभिव्यक्ति हमारे व्यक्तित्व के माध्यम से दृष्ट होता है ।

वस्तुतः मनोविश्लेषण के अंतर्गत मुख्यतया उपर्युक्त विवेचन ही होता है । मनोविश्लेषण का समास विग्रह है : मन का विश्लेषण । मनोविश्लेषण की परिभाषा देते हुए Sir Sigmund Freud लिखते हैं :

Psychoanalysis is the name of a procedure for the investigation of mental processes, which are almost inaccessible in any way- 2 of a

method -based upon that investigation_ for the treatment of neurotic disorders and of a collection of psychological information obtained along those lines, which is gradually being accumulated into a new scientific discipline -3

यह मनोविश्लेषण वस्तुतः मन के तीन अनुभागों, चेतन, अचेतन और अवचेतन, में से अवचेतन की व्याख्या है । वह सब कुछ, जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा अनुस्यूत होता है, छंटनी कर हमारी आवश्यकतानुसार इन तीन अनुभागों में पँहुचा दिया जाता है । चेतन मन दृश्य होता है हमारे क्रिया व्यवहार से । परन्तु, अवचेतन मन, जिसके बारे में कहा जाता है कि मानव मन जल में अधडूबे पत्थर की तरह है, जिसका वह भाग जो सरलता से दृश्य होता है चेतन है और अदृश्य डूबा भाग अवचेतन मन है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे चेतन मन को और इस तरह हमारे क्रिया व्यवहारों को प्रभावित करता है ।

कहानियों में पात्रों के इन्हीं क्रिया व्यवहारों के माध्यम से मनोविश्लेषण किया जाता है । "कहानियों में मनोविश्लेषण तीन स्तरों पर होता है यथा कहानी के पात्रों का मनोविश्लेषण तटस्थ होकर, कहानीकार के जीवन के विश्लेषण के द्वारा पात्रों के मन का विश्लेषण और पाठकों के अंतर्मन तथा मानसिकता के माध्यम से कथा सूत्रों का विवेचन तथा घटनाओं का विश्लेषण । एक सफल मनोविश्लेषणापेक्ष कहानी के कहानीकार की सफलता इसमें होती है कि वह पाठकों को शब्दों और घटनाओं के माध्यम से कहानी में अन्तर्निहित कर दे किंतु पाठक तथापि उन घटनाओं को तटस्थ होकर देख सके ।"4

हिन्दी कहानी जब प्रसाद और प्रेमचंद रूपी दो ध्रुवों पर सिमट रही थी, ऐसे ही में उनके समानान्तर जैनेन्द्र कुमार ने एक अनूठी शैली को अपनी कहानियों में जगह दी । ऐसा नहीं है कि यह शैली और विषयवस्तु सर्वथा नवीन था । कथासम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने भी इसी ओर इशारा किया था -

"सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो ।"5

परन्तु जैनेन्द्र ने मानो हिन्दी कहानी जगत् में क्रान्ति ही ला दी । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की -

“मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता, जो मात्र लौकिक हो, जो सम्पूर्णता से शारीरिक धरातल पर ही रहता हो, सबके भीतर ह्रदय है, जो सपने देखता है । सबके भीतर आत्मा है, जो जगती रहती है, जिसे शास्त्र छोटा नहीं, आग जलाती नहीं । सबके भीतर वह है जो अलौकिक है । मैं वह स्थल नहीं जानता जहाँ 'अलौकिक' न हो । कहाँ वह कण है, जहाँ परमात्मा का निवास नहीं है? इसलिए आलोचक से मैं कहता हूँ कि जो अलौकिक है, वह भी कहानी तुम्हारी ही है, तुमसे अलग नहीं है । रोज के जीवन में काम आने वाली, तुम्हारे जाने पहचाने व्यक्तियों का हवाला नहीं तो क्या, उन कहानियों में तो वह 'अलौकिक' है, जो तुम्हारे भीतर अधिक तहों में बैठा हुआ है । जो और भी घनिष्ठ और नित्य रूप में तुम्हारा अपना है ।”6

वस्तुत: जैनेन्द्र समाज की लघुतम इकाई व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व को ही चित्रित करते हैं । उनका व्यक्ति 'जयराज न होकर प्रियराज अथवा बलराज हो सकता है' या फ़िर वह सुनयना भी हो सकती है, सुलोचना भी हो सकती है' । उस व्यक्ति के मन में कई इच्छाएं होती हैं, जिन्हें नैतिकता और पैतृक संस्कारों के कारण दबा दबा पड़ता है । परन्तु वह उन कामनाओं को मिथकीय भगवान शंकर की तरह पूरी तरह नहीं दबा पाता । जैनेन्द्र के यहाँ सभी मूल्य और नियम उस व्यक्ति विशेष का नितांत वैयक्तिक हो जाता है । उनके पात्रों में ऐसे ही विचार दृष्टिगोचर होता है ।

‘खेल’ के मनोहर और सुरी के क्रिया व्यापार बालकोचित होते हुए भी प्रौढ़ लगते हैं । 'खेल' में मनोहर और सुरी दो ही पात्र हैं । जो घटना है, वह इन्हीं दो बच्चों के आपसी नोक झोंक, कलह, मान मनौवल तक सीमित है । मनोहर द्वारा जान बूझकर किसी के भाड़ को तोड़ देना किसी भी नटखट बालक की सहज वृत्ति हो सकती है, पर वह भाड़ था सुरी का । उसने जान बूझकर भाड़ तोड़ा तो अवश्य, परन्तु उसके मन में सुरी के हृदय को कष्ट पहुँचाने की कतई इच्छा न थी । वह तो मात्र चाहता था कि वह उसके प्रति उदासीन न रहे । सुरी तो आरम्भ से ही उससे उदासीन अपना भाड़ बनाने में मग्न थी । सुरी के नाराज़ होने पर मनोहर की ईमानदार स्वीकारोक्ति द्रष्टव्य है (

“सुरी, मनोहर तेरे पीछे खडा है । वह बड़ा दुष्ट है । बोल मत, पर उसपर रेत क्यों नहीं फेंक देती! उसे एक थप्पड़ लगा वह अब कभी कसूर नहीं करेगा । ”7

'व्याज कोप का रूप' दिखाती सुरी उसके कसूर की सज़ा मुक़र्रर करती है कि उसे वैसा ही भाड़ बना कर दिया जाए, जैसा कि उसने बनाया था । भाड़ बना और सुरी का 'स्त्रीत्व', जिसे पुरूष मनोहर की ईमानदार स्वीकारोक्ति ने व्यथित किया था, उसे पुनर्निर्मित भाड़ पर लात जमाकर अक्षुण्ण रखा और मनोहर द्वारा क्षमायाचना करने से लज्जित सुरी ने उस लजा के बंधन को काट दिया ।सुरी का उपर्युक्त क्रिया व्यवहार उसके संस्कारों में पितृसत्तात्मकता का प्रभाव मात्र था । वह पितृसत्ता जो नारियों में हीनताबोध जगाता है । 'पत्नी' की सुनंदा और 'रुकिया बुढ़िया' की रुक्मनी इसी पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के ही परिणाम हैं । यद्यपि जैनेन्द्र का मानना है -

विवाह से व्यक्ति रुकता है । ... विवाह का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है । प्रेम के निमित्त से उसकी सृष्टि है । 8

तथापि उनके पात्रों में प्रायः वैवाहिक संबंधों का खुलकर और भरपूर प्रयोग मिलता है । रुक्मनी, सुनंदा, सुदर्शना या फ़िर त्रिवेणी सभी वैवाहिक सम्बन्धों में आबद्ध है परन्तु सतीत्व की मर्यादा का वहाँ वे नहीं करतीं वरन सतीत्व को अपने अनुसार ढाल लेती हैं । वे भी सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त की 'उत्तरा' की भाँति इसी निम्नलिखित तथाकथित संस्कारों को ढोती है -

जो सहचरी का पद मुझे तुमने दया कर था दिया

वह था तुम्हारा इसलिए प्राणेश तुमने ले लिया

लेकिन तुम्हारी अनुचरी का जो पुण्यपद मुझको मिला

है छीन सकना तो कठिन, सकता नहीं कोई हिला ।।

भले इन प्रानेशों में लाखों ऐब थे, पर वे इनके पूज्य थे । अपने स्थायी स्वार्थ की कुर्बानी देकर अपने दक्षिणांगों को तुष्ट करती थीं । उनका मानना था कि "उनका काम तो सेवा है" 9

। सुनंदा के साथ कालिंदीचरण जब कभी करूँ दशा में प्रार्थना करता था, 'स्त्रीत्व' को ठेस पंहुचती थी । उसके प्रति जब भी दींन हीन सा कुछ चाहता था तो उसे लगता था कि

वह 'गैर' है । ऐसा नहीं है कि सुनंदा में यशपाल के 'करवा का व्रत' की नायिका की भाँति विद्रोह के भाव नहीं आते, पर उन भावों का प्रकाशन मुखर न होकर मूक है । जैनेन्द्र की पत्नी में भारतीय परम्परा की वही स्वाभाविकता है जो कभी द्विवेदी युगीन साहित्य में था । सुनंदा ऐसी भारतीय नारी है, जो सामाजिक विषमताओं के तहत सांस्कारिकता, नैतिकता और मर्यादा का बोझ ढोती चलती है । यही कारण है कि 'रुकिया बुढ़िया' में दीना या 'पत्नी' में कलिन्दीचरण जब भी कभी कटु व्यवहार करता तो क्रमशः रुक्मनी और सुनंदा में आक्रोश की एक चिंगारी भड़क उठती, परन्तु उस चिंगारी के भयंकर ज्वाला में तब्दील होने से पहले ही भारतीयता रूपी ढेर सारा पानी डालकर सदा के लिए सुला देती थीं ।

जैनेन्द्र की कहानियों में अभावग्रस्तता एक बहुत बड़ा मसला बनकर पाठकों के सामने उपस्थित होता है । यह अभाव उनके पात्रों में एक मानसिक ग्रंथि का निर्माण करता है । द्रष्टव्य है कि स्वयं जैनेन्द्र का जीवन बड़े अभावों में रहा । इनकी कहानियों के पात्रों का अभाव न मात्र आर्थिक वरन मानसिक और जैविक भी है । सुनंदा जैसे पात्रों में जहाँ मातृत्व का अभाव है तो 'मास्टरजी' की नायिका जैसों में जैविक । उनकी कई कहानियों में पात्र पात्रा अपने जैविक, मानसिक अथवा दोनों अभावों को मिटाने के निमित्त विवाहेतर सम्बन्ध बनाते हैं । 'एक रात' की शादी(शुदा सुदर्शना अपने पति को छोड़कर चल देती है जयराज से मिलने । स्टेशन पर वे एक दूसरे के काफ़ी क़रीब होते हैं । जयराज के जीवन का अभाव भी उसके सान्निध्य में मानों पट सा जाता है । एक दूसरे के स्पर्श से मानों दोनों को आनंद की प्राप्ति हो जाती है । 'त्रिवेनी' के घर में आया अतिथि, जो उसका विवाह पूर्व का प्रेमी था, से बात कर संवेदना के धरातल पर एकदम तरो ताज़ा हो जाती है । परन्तु उस भारतीय नारी को उसकी तथाकथित दायरों का एहसास होता है और वह निश्चय करती है -

"रात को जब पति आएँगे, मैं उनसे क्षमा माँगकर अपने आँसुओं से उनका सब क्रोध बहा दूँगी ।"10

यही नहीं 'मास्टर जी' की नायिका तो अपने प्रौढ़ पति को छोड़कर अपने ही घरेलू युवा नौकर के साथ भाग जाती है । सामाजिक सन्दर्भों में इन पात्रों के क्रिया(व्यापार भले ही अनैतिक एवं अमर्यादित लगें, जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सहज ही सुलभ हैं । इन पात्रों की मानसिकता के मूल में जैनेन्द्र का निम्नलिखित दर्शन दृष्टिगोचर होता है -

"बहुत पहले की बात है। ... पाप पुण्य की रेखा का उदय न हुआ था। कुछ निषिद्ध न था, न विधेय। ... विवाह न था और परस्पर सम्बन्धों में नातों का आरोप न था। स्त्री माता, बहन, पुत्री, पत्नी न थी वह मात्र मादा थी और पुरूष नर।"11

'पाजेब' कहानी का आशुतोष उस भूल को स्वीकार करता है, या यूँ कहें करवाया जाता है, जो उसने किया ही नहीं था। उसकी इस मानसिकता के पीछे भी उसका अवचेतन काम कर रहा है। उसने अनुभवों से इतना तो अवश्य जान लिया होगा की झूठ कह लेने से संकट टल जाती है, या चापलूसी करने से मनचाही वास्तु मिल जाती है। कोई भी जन्मजात अपराधी नहीं होता। अपने परिवेश अनुभवों से उसका व्यक्तित्व गठित होता है। बालक के क्षेत्र में नकारात्मकता उसके भीतर अपराध को पनपने का मौका देता है। कहानीकार आशु के बहाने मध्यवर्गीय मानसिकता की बनावट और बुनावट से पाठकों का परिचय करा देते हैं ।

'मास्टर जी' का प्रौढ़ मास्टर अपनी पत्नी से पुत्रीवत स्नेह रखता है। मास्टर का ऐसा व्यवहार भले ही असामान्य प्रतीत हो, असहज नहीं है। जैसा की कहानी कहती है, उनका विवाह तब हुआ था जब वह बाला थी और मास्टर युवा। उस समय उसके मन में भी जैविक इच्छा अवश्य रही होगी, परन्तु उम्र और उम्रानुरूप परिपक्वता में वह कम ही थी । अतः यह सम्भव है की मास्टर का व्यवहार उसके प्रति पुत्रीवत हो गया हो। यही उसकी प्रौढावस्था तक उसके साथ रही हो । परंतु उस लडकी की जैविक इच्छा का क्या? अतः वह अपने ही समवयस्क युवा नौकर के साथ भाग गयी। मास्टर इससे दुखी तो हुआ, परंतु उसके लौट आने पर दुगुना खुश। उसके आने पर मिठाईयाँ बाँटना उसके इसी मनोभाव का परिचायक है।

"बहुतेरा पढने लिखने के बाद और माँ के बहुत कहने सुनने पर भी रामेश्वर को कमाने की चिंता न हुई, तो माँ हार मानकर रह गयी। रामेश्वर की बाल सुलभ प्रकृति चाहती थी की रुपये का अभाव तो न रहेस पर कमाना भी न पड़े ।

उपर्युक्त समस्या न मात्र रामेश्वर की वरन वर्तमान युग के प्रायः सभी सद्यः(शिक्षितों की। ऐसे में उनपर दवाब बढ़ता है और रामेश्वर तो फोटोग्राफर बन गया, पर आज एक ग्रंथि

के रूप में मस्तिष्क में घर कर जाती है । आज होने वाले अधिकाँश आत्महत्याओं के पीछे यही वज़ह है ।12

'जाह्नवी' कहानी में प्रेम में टूटी हुई एक स्त्री की मानसिक दशा की अभिव्यक्ति है । किंतु यह अभिव्यक्ति एक अनुकूल परिवेश बिम्ब के माध्यम से है । "कथावाचक पात्र का छत पर उड़ते हुए कौओं के बीच घिरे जाह्नवी रोटियों के टुकड़े का फेंकते हुए गाना, प्रेम में पगी भावनाओं की करुण काव्यात्मक अभिव्यक्ति है ।" 13

तो वहीँ 'बाहुबली' में अजेय होने का गर्व दर्प में बदलकर एक ग्रंथि के रूप में अपना बसेरा कर लेता हैऔर तपश्चार्योपरांत भी उसे शान्ति तथा ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती ।

मनोविश्लेषणसिद्ध इस कथाकार ने Freud प्रदत्त मनोविश्लेषण को सिद्धांत रूप में ग्रहण तो किया, पर पूर्णतया नहीं । वरन् इन्होंने इसमें भारतीय मीशा और दर्शन का समाहार कर लिया । इनके पात्रों में एक भारतीय आत्मा बस्ती है । परवर्ती काल में इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय ने जैनेन्द्र की परम्परा को ही आगे बढाया और जैनेन्द्र के रंग में रंगकर मनोविश्लेषण की कहानियाँ जैनेंद्रमय हो गयीं ।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनेंद्रकुमार का विशिष्ट स्थान है । आप हिंदी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक के रूप में मान्य हैं । जैनेंद्र अपने पात्रों की सामान्यगति में सूक्ष्म संकेतों की निहिति की खोज करके उन्हें बड़े कौशल से प्रस्तुत करते हैं । उनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ इसी कारण से संयुक्त होकर उभरती हैं । जैनेंद्र के उपन्यासों में घटनाओं की संघटनात्मकता पर बहुत कम बल दिया गया मिलता है । चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं के निर्देशक सूत्र ही मनोविज्ञान और दर्शन का आश्रय लेकर विकास को प्राप्त होते हैं

जैनेन्द्र कुमार ने प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ के मार्ग को नहीं अपनाया, जो अपने समय का राजमार्ग था लेकिन वे प्रेमचन्द के विलोम नहीं थे, जैसा कि बहुत से समीक्षक सिद्ध करते रहे हैं । वे प्रेमचन्द के पूरक थे । प्रेमचन्द और जैनेन्द्र को साथ साथ रखकर ही जीवन और इतिहास को उसकी समग्रता के साथ समझा जा सकता है । जैनेन्द्र का सबसे बड़ा योगदान हिन्दी गद्य के निर्माण में था । भाषा के स्तर पर जैनेन्द्र द्वारा की गई तोड़

फोड़ ने हिन्दी को तराशने का अभूतपूर्व काम किया । जैनेन्द्र का गद्य न होता तो अज्ञेय का गद्य संभव न होता । हिन्दी कहानी ने प्रयोगशीलता का पहला पाठ जैनेन्द्र से ही सीखा ।

जैनेन्द्र ने हिन्दी को एक पारदर्शी भाषा और भंगिमा दी, एक नया तेवर दिया, एक नया रूप' दिया । आज के हिन्दी गद्य पर जैनेन्द्र की अमिट छाप है । जैनेंद्र के प्राय: सभी उपन्यासों में दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों के समावेश से दूरूहता आई है परंतु ये सारे तत्व जहाँ जहाँ भी उपन्यासों में समाविष्ट हुए हैं, वहाँ वे पात्रों के अंतर का सृजन प्रतीत होते हैं । यही कारण है कि जैनेंद्र के पात्र बाह्य वातावरण और परिस्थितियों से अप्रभावित लगते हैं और अपनी अंतर्मुखी गतियों से संचालित ।

उनकी प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार भी प्राय: इन्हीं गतियों के अनुरूप होते हैं । इसी का एक परिणाम यह भी हुआ है कि जैनेंद्र के उपन्यासों में चरित्रों की भरमार नहीं दिखाई देती । पात्रों की अल्पसंख्या के कारण भी जैनेंद्र के उपन्यासों में वैयक्तिक तत्वों की प्रधानता रही है । हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के साहित्य की सामाजिकता के बाद व्यक्ति के 'निजत्व' की कमी खलने लगी थी, जिसे जैनेंद्र ने पूरी की । इसलिए उन्हें मनोविश्लेषणात्मक परंपरा का प्रवर्तक माना जाता है । वह हिंदी गद्य में 'प्रयोगवाद' के जनक भी थे । क्रांतिकारिता तथा आतंकवादिता के तत्व भी जैनेंद्र के उपन्यासों के महत्वपूर्ण आधार है । उनके सभी उपन्यासों में प्रमुख पुरुष पात्र सशक्त क्रांति में आस्था रखते हैं । बाह्य स्वभाव, रुचि और व्यवहार में एक प्रकार की कोमलता और भीरुता की भावना लिए होकर भी ये अपने अंतर में महान विध्वंसक होते हैं । उनका यह विध्वंसकारी व्यक्तित्व नारी की प्रेमविषयक अस्वीकृतियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निर्मित होता है । इसी कारण जब वे किसी नारी का थोड़ा भी आश्रय, सहानुभूति या प्रेम पाते हैं, तब टूटकर गिर पड़ते हैं और तभी उनका बाह्य स्वभाव कोमल बन जाता है । जैनेंद्र के नारी पात्र प्राय: उपन्यास में प्रधानता लिए हुए होते हैं ।

उपन्यासकार ने अपने नारी पात्रों के चरित्रचित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है । स्त्री के विविध रूपों, उसकी क्षमताओं और प्रतिक्रियाओं का विश्वसनीय अंकन जैनेंद्र कर सके हैं । 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'सुखदा' आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब उनके नारी चरित्र भीषण मानसिक संघर्ष की स्थिति से गुज़रे हैं ।

नारी और पुरुष की अपूर्णता तथा अंतर्निर्भरता की भावना इस संघर्ष का मूल आधार है । वह अपने प्रति पुरुष के आकर्षण को समझती है, समर्पण के लिए प्रस्तुत रहती है और पूरक भावना की इस क्षमता से आल्हादित होती है, परंतु कभी कभी जब वह पुरुष में इस आकर्षण मोह का अभाव देखती है, तब क्षुब्ध होती है, व्यथित होती है । इसी प्रकार से जब पुरुष से कठोरता की अपेक्षा के समय विनम्रता पाती है, तब यह भी उसे असह्य हो जाता है ।

जैनेंद्र ने अपनी रचनाओं में मुख्यपात्र को रूढियों, प्रचलित मान्यताओं और प्रतिष्ठित संबंधों से हटकर दिखाया, जिसकी आलोचना भी हुई । जीवन और व्यक्ति को बंधी लकीरों के बीच से हटाकर देखने वाले जैनेंद्र के साहित्य ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी । जैनेंद्र ने 1929 में अपनी पहली कहानी संग्रह 'फांसी' की रचना की, जिसने इनको प्रसिद्ध कहानीकार के रूप में स्थापित किया । उसके बाद उन्होंने कई उपन्यासों की रचना की ।

जैनेंद्र को उनकी रचनाओं के लिए कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया ।

1929 में 'परख' उपन्यास के लिए हिंदुस्तानी अकादमी पुरस्कार, 1966 में लघु उपन्यास 'मुक्तिबोध' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया । भारत सरकार ने 1974 में उन्हें पद्म भूषण से भी सम्मानित किया । वह पहले ऐसे लेखक हुए, जिन्होंने हिंदी कहानियों को मनोवैज्ञानिक गहराइयों से जोड़ा । हिंदी गद्य की नई धारा शुरू करना सरल कार्य नहीं था मगर उन्होंने यह कर दिखाया । कहा जा सकता है कि जैनेंद्र हिंदी गद्य को प्रेमचंद युग से आगे ले आए ।

कई आलोचकों का मानना है कि जैनेंद्र ने कहानी को 'घटना' के स्तर से उठाकर 'चरित्र' और 'मनोवैज्ञानिक सत्य' पर लाने का प्रयास किया । उन्होंने कथावस्तु को सामाजिक धरातल से समेट कर व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया । जैनेंद्र के उपन्यासों और कहानियों में 'व्यक्ति की प्रतिष्ठा' हिंदी साहित्य में नई बात थी, जिसने न केवल व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंधों की नई व्याख्या की, बल्कि व्यक्ति के मन को उचित महत्ता भी दी ।

आज के हिन्दी गद्य पर जैनेन्द्र की अमिट छाप है । जैनेंद्र के प्रायः सभी उपन्यासों में दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों के समावेश से दूरूहता आई है परंतु ये सारे तत्व जहाँ जहाँ भी उपन्यासों में समाविष्ट हुए हैं, वहाँ वे पात्रों के अंतर का सृजन प्रतीत होते हैं । यही कारण है कि जैनेंद्र के पात्र बाह्य वातावरण और परिस्थितियों से अप्रभावित लगते हैं और अपनी अंतर्मुखी गतियों से संचालित । उनकी प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार भी प्रायः इन्हीं गतियों के अनुरूप होते हैं । इसी का एक परिणाम यह भी हुआ है कि जैनेंद्र के उपन्यासों में चरित्रों की भरमार नहीं दिखाई देती । पात्रों की अल्पसंख्या के कारण भी जैनेंद्र के उपन्यासों में वैयक्तिक तत्वों की प्रधानता रही है ।

क्रांतिकारिता तथा आतंकवादिता के तत्व भी जैनेंद्र के उपन्यासों के महत्वपूर्ण आधार है । उनके सभी उपन्यासों में प्रमुख पुरुष पात्र सशक्त क्रांति में आस्था रखते हैं । बाह्य स्वभाव, रुचि और व्यवहार में एक प्रकार की कोमलता और भीरुता की भावना लिए होकर भी ये अपने अंतर में महान विध्वंसक होते हैं । उनका यह विध्वंसकारी व्यक्तित्व नारी की प्रेमविषयक अस्वीकृतियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निर्मित होता है । इसी कारण जब वे किसी नारी का थोड़ा भी आश्रय, सहानुभूति या प्रेम पाते हैं, तब टूटकर गिर पड़ते हैं और तभी उनका बाह्य स्वभाव कोमल बन जाता है । जैनेंद्र के नारी पात्र प्रायः उपन्यास में प्रधानता लिए हुए होते हैं । उपन्यासकार ने अपने नारी पात्रों के चरित्र चित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है । स्त्री के विविध रूपों, उसकी क्षमताओं और प्रतिक्रियाओं का विश्वसनीय अंकन जैनेंद्र कर सके हैं । 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'सुखदा' आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब उनके नारी चरित्र भीषण मानसिक संघर्ष की स्थिति से गुज़रे हैं । नारी और पुरुष की अपूर्णता तथा अंतर्निर्भरता की भावना इस संघर्ष का मूल आधार है । वह अपने प्रति पुरुष के आकर्षण को समझती है, समर्पण के लिए प्रस्तुत रहती है और पूरक भावना की इस क्षमता से आल्हादित होती है, परंतु कभी कभी जब वह पुरुष में इस आकर्षण मोह का अभाव देखती है, तब क्षुब्ध होती है, व्यथित होती है । इसी प्रकार से जब पुरुष से कठोरता की अपेक्षा के समय विनम्रता पाती है, तब यह भी उसे असह्य हो जाता है ।

जैनन्द्र कुमार का हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान है । जैनेन्द्र पहले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने हिन्दी गद्य को मनोवैज्ञानिक गहरायों से जोड़ा । जिस समय प्रेमचन्द सामाजिक पृष्ठभूमि के

उपन्यास और कहानियाँ लिख कर जनता को जीवन की सच्चाइयों से जोड़ने के काम में महारथ सिद्ध कर रहे थे, जब हिन्दी गद्य 'प्रेमचन्द युग' के नाम से जाना जा रहा था, तब उस नयी लहर के मध्य एक बिल्कुल नयी धारा प्रारम्भ करना सरल कार्य नहीं था । आलोचकों और पाठकों की प्रतिक्रिया की चिन्ता किये बिना, कहानी और उपन्यास लिखना जैनेन्द्र के लिये कितना कठिन रहा होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है । बहुत से आलोचकों ने जैनेन्द्र के साहित्य के व्यक्तिनिष्ठ वातावरण और स्वतंत्र मानसिकता वाली नायिकाओं की आलेचना भी की परंतु व्यक्ति को रूढ़ियों, प्रचलित मान्यताओं और प्रतिष्ठित संबंधों से हट कर देखने और दिखाने के संकल्प से जैनेन्द्र विचलित नहीं हुए । जीवन और व्यक्ति को बंधी लकीरों के बीच से हटा कर देखने वाले जैनेन्द्र के साहित्य ने हिन्दी साहित्य को नयी दिशा दी जिस पर बाद में हमें अज्ञेय चलते हुए दिखाई देते हैं ।

मनुष्य का व्यक्तित्व सामाजिक स्थितियों और भीतरी चिंतन चिंताओं से मिल कर बनता है । दोनों में से किसी एक का अभाव उसके होने को खंडित करता है । इस दृष्टि से जैनेन्द्र, प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्द साहित्य के पूरक हैं । प्रेमचन्द के साहित्य की सामाजिकता में व्यक्ति के जिस निजत्व की कमी कभी कभी खलती थी वह जैनन्द्र ने पूरी की । इस दृष्टि से जैनेन्द्र को हिन्दी गद्य में 'प्रयोगवाद' का प्रारम्भकर्ता कहा जा सकता है । उनके प्रारम्भ के उपन्यासों 'परख'(1929_, 'सुनीता'(1935) और 'त्यागपत्र'(1937) ने व्यस्क पाठकों को सोचने के लिए बहुत सी नयी सामग्री दी । 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में गोपाल राय जी लिखते हैं 'उनके उपन्यासों की कहानी अधिकतर एक परिवार की कहानी होती है और वे 'शहर की गली और कोठरी की सभ्यता' में ही सिमट कर व्यक्ति पात्रों की मानसिक गहराइयों में प्रवेश करने की कोशिश करते हैं ।' जैनन्द्र के पात्र बने बनाये सामाजिक नियमों को स्वीकार कर, उनमें अपना जीवन बिताने की चेष्टा नहीं करते अपितु उन नियमों को चुनौती देते हैं । यह चुनौती प्रायः उनकी नायिकाओं की ओर से आती है जो उनकी लगभग सभी रचनाओं में मुख्य पात्र भी हैं । सन 1930-35 या 40 में स्त्रियों का समाज की चिन्ता किये बिना, विवाह संस्था के प्रति प्रश्न उठाना स्वयं में नयी बात थी ।

जैनेन्द्र के पात्रों में यह शंका, उलझन दिखाई देती है कि स्त्रियाँ संबंधों की मर्यादा में रहते हुए भी स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाए रखना चाहती हैं जो निस्संदेह भारतीय परिवेश में आज,

यानि जैनेन्द्र के इन उपन्यासों के समय के 60-70 वर्ष बाद भी यथार्थ नहीं है जैनन्द्र जानते थे कि वह जिस नारी स्वततंत्रता के विषय में सोच रहे हैं, वह एक दुर्लभ वस्तु है । समाज के स्वीकार और प्रतिक्रिया के प्रश्नों से वे भी उलझे थे इसलिये वे प्रश्नों को उठाते तो हैं किन्तु उनका उत्तर स्पष्ट रूप से नहीं देते बल्कि कहानी को एक मोड़ पर लाकर छोड़ देते जहाँ से पाठक की कल्पना और भाव बुद्धि अपने इच्छानुसार विचरती है । बहुधा यह स्थिति खीज भी उत्पन्न करती थी विशेषकर उस समय में, जब ये उपन्यास लिखे गये थे । प्रेमचन्द के उपन्यासों में समस्याओं का प्रायः समाधान हुआ करता था, उस समय एक भिन्न प्रकार की समस्या उठा कर, बिना निदान दिए, छोड़ देना निस्संदेह एक नई शुरूआत थी ।

उनके उपन्यासों : 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन' आदि में उनके स्त्री पात्र समाज की विचारधारा को बदलने में असमर्थ होने के कारण अन्ततः आत्मयातना के शिकार बनते हैं यह आत्मयातना उनके जीवन दर्शन का एक अंग बन जाती है । उनमें समाज से अलग हट कर अपने अस्तित्व को ढूँढने का आत्मतोष तो है किन्तु उस स्वतंत्र अस्तित्व के साथ रह न पाने की निराशा भी है । जैनेन्द्र के उपन्यासों ने निस्संदेह साहित्यक विचारधारा और दर्शन को नई दिशा दी अज्ञेय के उपन्यास इसी दिशा में आगे बढ़े हुए लगते हैं ।

जैनेन्द्र की कहानियों में भी हमें यह नई दिशा दिखाई देती है । आलोचकों का मानना है कि 'उन्होंने कहानी को 'घटना' के स्तर से उठाकर 'चरित्र' और 'मनोवैज्ञानिक सत्य' पर लाने का प्रयास किया । उन्होंने कथावस्तु को सामाजिक धरातल से समेट कर व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया ।' चाहे उनकी कहानी 'हत्या' हो या 'खेल', 'अपना अपना भाग्य', 'बाहुबली', 'पाजेब', ध्रुवतारा, 'दो चिड़ियाँ' आदि सभी कहानियों में व्यक्ति मन की शंकाओं, प्रश्नों को प्रस्तुत करती हैं ।

कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों और कहानियों में व्यक्ति की प्रतिष्ठा, हिन्दी साहित्य में नई बात थी जिसने न केवल व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंध नई व्याख्या की बल्कि व्यक्ति मन को उचित महत्ता भी दिलवाई । जैनेन्द्र के इस योगदान को हिन्दी साहित्य कभी नहीं भूल सकता ।

संदर्भ:

1. http://en=wikipedia=org/wiki/Personality_psychology

2. Carver, C=, & Scheier, M= -2004_= æPerspectives on Personalityæ -5th ed=_= Boston: Pearson

3. पृष्ठ सं.(131,15, Historical and expository works on Psychoanalysis"(Sir Sigmund Freud

4. पृष्ठ सं.: 95, "समकालीन विचारधाराएँ और साहित्य" डा. राजेन्द्र मिश्र

5. पृष्ठ सं.: 36, "कुछ विचार" प्रेमचन्द

6. "एक रात' की भूमिका: जैनेन्द्र

7. पृष्ठ सं.(45, कहानी 'खेल', 'जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ'((संपादिका) डा. निर्मला जैन, पूर्वोदय प्रकाशन

8. पृष्ठ सं.: 147, कहानी 'ध्रुवयात्रा', 'जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ'((संपादिका) डा. निर्मला जैन, पूर्वोदय प्रकाशन

9. कहानी 'पत्नी', 'जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ'((संपादिका) डा. निर्मला जैन, पूर्वोदय प्रकाशन

10. पृष्ठ सं.: 141, कहानी 'त्रिवेनी', 'जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ'((संपादिका) डा. निर्मला जैन, पूर्वोदय प्रकाशन

11 पृष्ठ सं.: 124, कहानी 'बाहुबली', 'जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' (संपादिका) डा. निर्मला जैन, पूर्वोदय प्रकाशन

12. पृष्ठ सं.: 29, कहानी 'फोटोग्राफी', 'जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ'((संपादिका) डा'. निर्मला जैन, पूर्वोदय प्रकाशन

13. 'हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान' (रामदरश मिश्र)

३.२ जैनेन्द्र की रचनाओं में स्त्री

सीमित तथा संतुलित पात्रों एवं परिवेश के सहारे मानव मस्तिष्क की गहराई तक पहुँचने में, मन की उलझनों को पकड़ पाने में और मानसिक द्वंद्व की स्थिति को भाँपने में जैनेन्द्र सक्षम हैं । शायद यही कारण है कि हिंदी साहित्य में उन्हें एक मनोविश्लेषणवादी रचनाकार के रूप में स्थान प्राप्त है । एक सफल रचनाकार का दायित्व है कि उसका लेखकीय सरोकार व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के निर्माण में अहम भूमिका निभाए । अपने समय के प्रश्नों व समस्याओं से लेखक जूझे और समाज को उसकी कुंद मान्यताओं व नीतियों पर सोचने को विवश करे । जैनेन्द्र के लेखकीय सरोकार के केन्द्र में स्त्री है । स्त्री जीवन, उसका अस्तित्व, परिवार व समाज में उसकी भूमिका, स्त्री की इच्छापूर्ति तथा उत्थान के मार्ग में आने वाली समस्याएँ : यह सभी विषय जैनेन्द्र के साहित्य के मुख्य बिंदु रहे हैं । यह कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र का साहित्य स्त्री समस्याओं व प्रश्नों से लगातार जूझता रहा है । यही उनकी रचनाओं का आधार भी है । यहाँ चर्चा उनके उपन्यासों के संदर्भ में है तो सन् 1929 में 'परख' से आरंभ कर सन् 1985में 'दशार्क' के लेखन तक उनका रचनाकाल विस्तृत है । इस समयावधि में जैनेन्द्र ने कुल तेरह उपन्यास लिखे जिनमें से अधिकतर उपन्यासों का कथ्य स्त्री संबंधी है । लेखक ने अपने कुछ उपन्यासों के शीर्षक भी कथा की मुख्य चरित्र रही स्त्रियों के नाम पर ही दिए हैं । उदाहरण : 'सुनीता', 'कल्याणी', 'सुखदा' । यह उपन्यास स्त्री-जीवन के वृत्त को समेटे हुए हैं । हम लेखक के प्रारंभिक तीन उपन्यासों अर्थात् 'परख'(1929), 'सुनीता'(1935) व 'त्यागपत्र'(1937) के आधार पर जैनेन्द्र के स्त्री चरित्रों के गठन को समझने का प्रयास करेंगे ।

जैनेन्द्र कुमार स्त्री को 'सर्वस्व' रूप में स्वीकार करते हैं । यह रूप अपनाते ही 'स्त्री' पूरे विश्व का मूलाधार बन जाती है । उनका मानना है -'स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है, घर को, कुटुम्ब को बनाती है । फिर उन्हें बिगाड़ती भी वही है । हर्ष भी वही और विमर्श भी ।

ठहराव भी और उजाड़ भी । दूध भी और खून भी । रोटी भी और स्कीमें भी । और फिर आपकी मरम्मत और श्रेष्ठता भी सब कुछ स्त्री ही बनाती है । धर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फ़ैशन की जड़ भी वही है । एक शब्द में कहो ,...दुनिया स्त्री पर टिकी है । 'परख' की कट्टो, 'सुनीता' की सुनीता और 'त्यागपत्र' की मृणाल को लेखक ने उपर्युक्त स्वरूप के अनुरूप गढ़ने का प्रयास किया है । इसीलिए कट्टो, सुनीता और मृणाल 'स्व' से अधिक 'पर' की चिंता करते हैं । वे स्वयं से अधिक दूसरों के प्रति संवेदनशील हैं क्योंकि सम्पूर्ण विश्व का केन्द्रीय तत्व यह स्त्रियाँ हैं, इन पर पूरे परिवार, समाज व अंततः पूरे जगत को बांधकर रखने की ज़िम्मेदारी है । ऐसे चरित्र स्वयं अपने जीवन को बलि चढ़ाकर, गर्त में ढ़केलकर भी किसी को कष्ट पहुँचाने या मुखर विद्रोह करने की चेष्टा नहीं करते । आदर्श, अहिंसा, आत्मसंघर्ष इन स्त्रियों की चारित्रिक विशेषताएँ हैं जो तत्कालीन भारतीय समाज में स्त्री छवि को स्पष्ट करती हैं ।

जैनेन्द्र के स्त्री चरित्रों में परम्परा एवं आधुनिकता का सामंजस्य दिखाई पड़ता है । हालाँकि वर्तमान संदर्भों में यह स्त्री चरित्र अधिक पारंपरिक और कम आधुनिक नज़र आती हैं । जिस युग में जैनेन्द्र उपन्यासों की रचना प्रारम्भ करते हैं अर्थात् द्दण्वीं शताब्दी का दूसरा तीसरा दशक, यह काल भी परम्परा और आधुनिकता के संघर्ष का समय है । कट्टो, सुनीता और मृणाल पारम्परिक इन अर्थों में हैं कि वे जानती हैं कि तत्कालीन सामाजिक संरचना के तहत वे कर्तव्यों से बंधी हैं । उनके यह कर्तव्य उनके परिवार के प्रति हैं । जैनेन्द्र के यहाँ परिवार और विवाह संस्कार परम्पराओं से जुड़ा है । अतः इनका निर्वाह करने वाली स्त्री पारम्परिक ही होगी । इन स्त्रियों में परिवार या विवाह संस्था को तोड़ने की इच्छा नहीं है क्योंकि इनसे कटकर या बाहर निकलकर 'जीवन' गर्त की ओर बढ़ता चला जाएगा । मृणाल के दुखद अंत के माध्यम से जैनेन्द्र यही संकेत देना चाहते हैं क्योंकि जैनेन्द्र स्त्री की स्वतंत्र सत्ता के पक्षधर नहीं हैं । 'त्यागपत्र' में प्रमोद के माध्यम से वे कहलवाते हैं । 'विवाह की ग्रंथि दो के बीच की ग्रंथि नहीं है वह समाज के बीच की भी है । चाहने से वह क्या टूटती है । विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं है, व्यवस्था का प्रश्न है ।.. वह गांठ है जो बंधी कि खुल नहीं सकती । टूटे तो टूट भले ही जाए लेकिन टूटना कब किसका श्रेयस्कर है?' पारम्परिक यह स्त्रियाँ इन अर्थों में भी हैं कि इन्हें अधिकारसंपन्नता प्राप्त नहीं है जो कि तत्कालीन समय का भी प्रभाव है । अधिकार पाने हेतु यहाँ स्त्री लड़ती नहीं किन्तु स्त्री हेतु समाज के द्वारा बनाये गए नियमों व वर्जनाओं का पालन भी नहीं करती । स्वायत्तता

की दरकार इन्हें नहीं है, पति के साथ होते हुए आर्थिक आत्मनिर्भरता की आवश्यकता भी इन्हें नहीं है क्योंकि जैनेन्द्र स्त्री को पुरुष की सहभागी के रूप में देखते हैं, प्रतिद्वंद्वी के रूप में नहीं । जैनेन्द्र कुमार का मत है('स्त्री पुरुष के पौरुष स्पर्धा में न पड़े बल्कि उसे उसी रूप में धारण करके कृतार्थता का अनुभव करे । आज का कैरियिस्ट शब्द सतीत्व के अर्थ स्पष्ट करता है । कैरिज़्म में पुरुष से होड़ है । सतीत्व में पुरुष से योग और सहयोग से हैं । आज के आधुनिक संदर्भों में ऐसी मान्यताओं को इन स्त्री चरित्रों की सीमाओं के रूप में भी देखा जा सकता है । किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है कि जैनेन्द्र कुमार का समय परम्परा व आधुनिकता के संघर्ष का समय रहा है और ऐसे समय में जैनेन्द्र परस्पर विरोध एवं प्रतियोगिता की अपेक्षा सामंजस्य का मार्ग चुनते हैं । उनके भीतर न जड़ परम्पराओं को ढोते रहने का आग्रह है और न ही आधुनिकता के नाम पर अपना सब कुछ ताक पर रख देने का चलन है । जैनेन्द्र के साहित्य का मूल तत्व 'प्रेम' है । 'प्रेम' का उत्कृष्ट रूप जैनेन्द्र 'स्त्री' के भीतर पाते हैं । यही कारण है कि परिवार तथा विवाह संस्थान बचाए रखने का दायित्व उन्होंने स्त्रियों के हाथ में दिया । 'प्रेम' के अभाव में जैनेन्द्र विवाह और परिवार की नींव को कमज़ोर व अधूरा मानते हैं । उदाहरण के तौर पर उपन्यास 'परख' में कट्टो और बिहारी का संबंध, उनका गठबंधन प्रेम एवं विश्वास पर आधारित है । इस विवाह को सामाजिक रीति रिवाजों की कोई दरकार नहीं । जैनेन्द्र के लिए 'परिवार' समाज और राष्ट्र के निर्माण की मूल इकाई है । और इस 'परिवार' का केन्द्रीय बिंदु एवं रक्षक वे स्त्री को मानते हैं । स्त्री परिवार की पूरक है ।

दूसरी ओर जैनेन्द्र के स्त्री चरित्रों में आधुनिक स्त्री की झलक भी दिखलाई पड़ती है । भले ही यह स्त्रियाँ वर्तमान की स्त्रियों की भाँति अपने अधिकार पाने के लिए बैठकों, समितियों या आंदोलनों का सहारा नहीं लेतीं किन्तु जैनेन्द्र के स्त्री चरित्र अपने अधिकारों के प्रति सजग अवश्य हैं इसी कारणवश वे निरंतर संघर्षमयी जीवन जीती हैं । सही ग़लत, नीति अनीति, नैतिक अनैतिक के मायने इन चरित्रों ने स्वयं निर्मित किए समाज से नहीं लिए, इनका वे अनुसरण भी करती हैं । परम्परा के नाम पर थोपी जाने वाली मान्यताओं व आदर्शों को वे तोड़कर 'आदर्श' का नया रूप गढ़ती हैं । कम से कम अपने जीवन की राहें वह स्वयं निर्मित करती हुईं, अपने निर्णय पर अडिग व सामाजिक नैतिकता के नाम पर ढोंग की मानसिकता से स्वयं को अलगाते हुए अपने स्वयं चयनित मार्ग पर वे आगे बढ़ती हैं । सामाजिक संरचना के दोहरे मापदंडों व खोखले आदर्शों को जैनेन्द्र के स्त्री

चरित्र नहीं अपनाते अपितु अहिंसात्मक तरीके से, अपने जीवन जीने के ढंग में बदलाव कर यह स्त्रियाँ सामाजिक मूल्य मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं । जीवन की कटुता व विषमताओं को भी यह स्त्रियाँ पूरी ईमानदारी से स्वीकार करती हैं और कष्टदायी समय में भी अपने कर्तव्यों का निर्वाह करती हैं । आत्मसंघर्ष तथा अहिंसात्मक रुख़ अख्तियार कर यह स्त्रियाँ विरोध भी जताती हैं । इस संबंध में लेखक गोविन्द मिश्र का मत है : 'समाज को बदलने के हिंसात्मक तरीक़े के जैनेन्द्र क़ायल नहीं । परिवर्तन इस तरह कि लोगों को किसी भी तरह खदेड़ा, कुचला या अपनी जगह पर खचोटा न जाए, बल्कि समझाने के रास्ते त्याग और साझेपन के ज़रिए, नम्र और विनीत ढ़ंग से मनवाकर परिवर्तन लाया जाए । विरोध जताने एवं परिवर्तन की आदर्शवादी, अहिंसात्मक एवं सत्याग्रही तकनीक के कारण ही जैनेन्द्र पर गांधीवाद के प्रभाव को स्वीकार किया जाता है । जैनेन्द्र के स्त्री पात्र कट्टो, सुनीता व मृणाल इसी लीक पर चलती हैं ।

कट्टो बाल विधवा है जिसके लिए प्रेम और विवाह जैसे संबंध तत्कालीन समाज में वर्जित हैं, पाप हैं । बावजूद इसके न तो समाज उसकी प्रेम भावना पर ही अंकुश लगा सका और न ही विवाह करने पर । कट्टो किसी भी सामाजिक रीति(रिवाज़ या समाज द्वारा निर्मित विवाह चिह्न का सहारा न लेते हुए केवल एक सूत की माला पहनाकर बिहारी का वरण करती है । आजन्म पास रहने का कोई बंधन नहीं रखती हाँ, साथ निभाने की प्रतिज्ञा ज़रूर करती है । इसीलिए कट्टो बिहारी के विवाह को लेखक ने 'यज्ञ' कहा है क्योंकि इसमें कोई स्वार्थ, कोई बंधन नहीं अपितु पवित्रता और परमार्थ ही है ।

सुनीता एक पतिव्रता स्त्री है । पति के राह भटके मित्र को सही राह दिखाना अपना पत्नीधर्म समझती है । वह एक ईमानदार पत्नी है और इसी कारण पति के आग्रह पर उसके मित्र हरिप्रसन्न को जीवन के भटकावों से दूर पति की इच्छानुसार ढालना चाहती है । इस प्रयास में हरिप्रसन्न के मन में अपने लिए उपजे आकर्षण को जानकर सुनीता हतप्रभ नहीं होती अपितु समाज जिसे अनैतिक व अधर्म कहेगा वह राह अपनाकर हरि को वासना से मुक्त कर कर्मशील होने को प्रेरित करती है ।

वहीं मृणाल एक प्रबल चरित्र के रूप में उभरती है । वह अत्यंत उदार व आदर्शवादी चरित्र के रूप में उभरती है जो स्वयं के जीवन में अपार कष्ट पाकर भी सदा दूसरों के लिए केवल सुख की ही आकांक्षा रखती है । उसके मन में अपनी परिस्थितियों के लिए ज़िम्मेदार

लोगों के लिए कोई कटुता नहीं और न ही वह किसी को दोषी मानती है । मृणाल अपने जीवन में जिससे भी जुड़ना चाहती है या जुड़ी वह केवल सत्य और पूरी निष्ठा के साथ, फिर उस पर अपना सर्वस्व न्योछावर करना चाहा । समाज की नजरों में वह एक बाज़ारू औरत है किन्तु तन देकर धन की उम्मीद करना वह बेमानी समझती है । जीवन में मिली ठोकरों की प्रतिक्रिया वह केवल मौन आत्मसंघर्ष के रूप में व्यक्त करती है । अपने संघर्षमय जीवन में सामाजिक नियमों का वह सदा तिरस्कार करती है । मृणाल जैसा स्त्री चरित्र तथाकथित सभ्य समाज की 'सभ्यता' पर सवालिया निशान लगाता है, समाज के भीतर दोहरा स्वरूप लेकर विचरण करते लोगों को बेनक़ाब करता है और विवश करता है बुद्धिजीवी वर्ग को सामाजिक नियम(कानून, नैतिकता, आदर्श की परिभाषाओं पर पुनर्विचार करने हेतु ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान समय का स्त्री विमर्श जिस दिशा में गतिमान है उसके आरम्भिक कदम जैनेन्द्र जैसे रचनाकारों के साहित्य की देन है और स्त्री विमर्श की यही नींव है ।

चतुर्थः अध्याय

४.१ जैनेन्द्र रचित त्यागपत्र में निहित संवेदना और शिल्प

त्यागपत्र की रचना में पूर्व जैनेन्द्र के परख तथा सुनीता दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे । इन उपन्यासों ने युग के पाठकों, रचनाकारों तथा समीक्षकों को अपनी ओर आकर्षित किया था । प्रेमचन्द ने स्वयं जैनेन्द्र के प्रथम उपन्यास परख की समीक्षा लिखी और उसे एक सुंदर चीज घोषित किया । सुनीता ने अपने कथ्य के कारण एक बड़े समुदाय को अपनी ओर आकर्षित किया और जैनेन्द्र के व्यक्तित्व तथा सुनीता की नग्नता पर खुलकर चर्चा हुई । त्यागपत्र के प्रकाशन से तो हिन्दी उपन्यास एक नये युग में प्रवेश करता है । जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द युग में लिखना आरम्भ किया, परन्तु उन्होंने प्रेमचन्द की औपन्यासिक प्रवृत्तियों एवं शिल्पविधियों का अनुकरण न करके स्वयं एक नये संसार की सृष्टि की । यह नया संसार त्यागपत्र से ही जन्म लेता है, जिसमें लेखक संवेदना और शिल्प सभी दृष्टियों से एक नूतन दिशा की ओर अग्रसर होता हुआ दृष्टिगोचर होता है । डा. देवराज उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है कि यह उपन्यास इतिहास बनकर सदैव याद किया जाता रहेगा । जैनेन्द्र एक पतित एवं व्यथित नारी मृणाल के जीवन की हृदयद्रावक त्रासदी को प्रस्तुत करने में पूर्णरूप से सफल हुए हैं । जैनेन्द्र ने सामाजिक विसंगतियों एवं सड़ी गली परंपराओं में निस्सहाय डूबती हुई एक नारी की मार्मिक व्यथा कथा बिना, किसी आदर्शवादी समाधान एवं यूटोपिया का निर्माण किये सीधे सरल ढंग से कर दी है । मृणाल जैसे पतित एवं व्यथित चरित्र की उदभावना करके जैनेन्द्र ने अपनी सृजनात्मक क्षमता एवं शिल्प कौशल का अदभुत परिचय दिया है । यही कारण है, हिन्दी उपन्यासों की नायिकाओं में उसका एक विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया है ।

त्यागपत्र का रूपबन्ध एवं कथा प्रस्तुत करने की विधि भी समीक्षकों में बहुत चर्चित हुई और उसे जैनेन्द्र का योगदान माना गया । जैनेन्द्र ने यद्यपि यह लिखा कि उन्हें शिल्प और विन्यास का कभी पता नहीं रहा, परन्तु शिल्प एवं रूपबंध के प्रति उनकी सजगता सभी उपन्यासों में दृष्टिगत होती है । 'त्यागपत्र की कथा छोटे जीवन का चित्रण करने के कारण लघु नहीं है । अपितु जैनेन्द्र अपनी इच्छा से पट परिवर्तन, पटाक्षेप तथा दृश्यों को बदलते रहे हैं । कथा प्रस्तुत करने के लिए जज साहब की सृष्टि करके भी जैनेन्द्र ने उपन्यास का रूपबन्ध सघन, तीव्र एवं कसा हुआ बना दिया है । प्रमोद जब चाहता है, कथा प्रसंगों को

बदल देता है और मृणाल के जीवन के नये प्रसंगों को प्रस्तुत करने लगता है । इससे लेखक पात्रों के अनावश्यक फैलाव और भावुकता में बहकते पक्षों पर अंकुश रख सका है । प्रमोद द्वारा कथा वर्णन में फ्लैश बैक पद्धति का प्रयोग करने से भी कथा का अनावश्यक विस्तार नहीं हो पाया है । इस प्रकार जैनेन्द्र कथा प्रस्तुत करने की नयी विधि का प्रयोग करके रूपबन्धों को सघन, संक्षिप्त, नारकीय एवं सम्बद्ध बनाने में सफल हुए हैं । उनका यह शिल्प कौशल अन्य उपन्यासों में कम ही दिखायी देता है ।

४.२ कथानक

एम. दयाल एक प्रान्त के चीफ जज थे । उनकी एक बुआ मृणाल थी, जो उनसे चार पाँच वर्ष बड़ी थी । जज साहब बुआ के मरने की खबर सुनकर बेचैन हो उठे और वर्षों पुरानी बुआ की कहानी लिखने बैठ गये ।

प्रमोद अपनी बाल्यावस्था की घटनाओं और बुआ से सम्बन्धित प्रसंगों से कथा का आरंभ करता है । परिवार में पिता-माता के साथ वह तथा बुआ रहते थे । पिता, बुआ को स्नेह करते थे और माता का उस पर अंकुश व नियंत्रण था । माता अत्यन्त कुशल गृहिणी थीं परन्तु उतनी कोमल नहीं थी । वह बुआ को आर्य गृहिणी के रूप में ढालना चाहती थीं । बुआ का सौंदर्य अनुपम था और प्रमोद से खूब बनती थी । बुआ बग्घी में पढ़ने जाती और स्कूल में की गई शरारतों को प्रमोद को सुनाती । बुआ ने एक दिन अपनी सहेली शीला द्वारा मास्टर जी की कुर्सी में पिन लगाने और स्वयं पिटने की घटना सुनायी । बुआ किताब कापियाँ बड़े चाव से रखतीं, स्कूल भी बड़ी उत्सुकता से जाती, परन्तु पढ़ने में उसका विशेष मन न था । प्रमोद उन दिनों की याद करता है, जब बुआ उसको कपड़े पहनाती थी, चपत मार मारकर खिलाती थी, प्यार करती थी और अपने भेद की बातें कहती थीं । बड़ी होने के साथ बुआ बुद्धिमती होती गयी और वह प्रमोद को बेटा, भैया, गदहा कहकर तरह तरह के मीठे मीठे उपदेश देती । कुछ और बड़ी होने पर बुआ के प्यार का स्वरूप बदने लगा । अब वह उपदेश नहीं देती, बलिक प्रमोद को छाती से लगाकर जाने कहां देखने लगती । वह अब स्कूल की शरारतों की कहानी नहीं सुनाती । उसे अब छत पर खटोला डालकर एकांत में लेटे रहना, उड़ती चीलों को देखते रहना तथा पेट के बल लेटकर कोयले से घरती पर कीरम काटे खींचना अच्छा लगता । वह कभी कभी प्रमोद को अंक में भर लेती और संग संग पतंग उड़ाने की इच्छा प्रकट करती ।

एक दिन मृणाल शीला के घर से देर से लौटी तो बड़ी प्रसन्न थी । वह बेबात हँसती, बेबात प्रमोद को पकड़कर इधर उधर खींचती । वह चाहती प्रमोद उसे बुआ की जगह जीजी कहा करे और वह चिड़िया की तरह आसमान में उड़ जाय । उस दिन वह रात को बहुत देर तक प्रमोद को चिपटाए रही । उसने प्रमोद से कहा कि वह उसे बहुत प्यार करती है । मृणाल का देर से आने का क्रम जारी रहा । एक दिन नौकर भेजकर शीला के घर से उसे बुलाया गया । मां ने क्रोधावेश में प्रमोद से बेंत मंगायी और पीछे वाली कोठरी में मृणाल को बन्द करके बेंत से खूब पिटाई की । प्रमोद सकपका गया, कुछ समझ में न आया । वह साहस करके बुआ के पास गया । देखा, बुआ औंधी पड़ी थी, और जगह जगह नील उभर आये थे । यह गुमसुम पड़ी थी और बाल बिखरे थे । प्रमोद दबे पांव लौट आया । उस दिन से बुआ की हँसी गायब हो गई और पढ़ना छुड़ा दिया गया । वह शान्त भाव से सीने-पिरोने, झाड़ने-बुहारने आदि कार्यों में लगी रहती । काम करने के अतिरिक्त उसे और किसी बात का मतलब न था । मां का अजब हाल था, कभी प्रमोद को डांटती और कभी नौकरों को झिड़कती । पांच-छह महीने के बाद बुआ की शादी हो गई । शादी के कुछ घंटे पहले बुआ ने प्रमोद को छाती से चिपका लिया और पीड़ाजनक शब्दों में कहा कि तेरी बुआ तो मर गई, तू उसे अब कभी याद मत करना । विदा होते समय प्रमोद ने बुआ का आंचल और फिर पैर पकड़ लिये और फूट-फूटकर रो पड़ा । बुआ ने जल्दी आने की कसम खाई, तब प्रमोद ने उसे छोड़ा । बुआ एक रेशम का रूमाल प्रमोद के हाथ में थमाकर मोटर में जा बैठी ।

चौथे दिन बुआ आ गई थी । प्रमोद ने जब फूफा को देखा, तब उसे उनकी उम्र ज्यादा मालूम हुई थी । यह उसे पीछे मालूम हुआ कि यह उसका दूसरा विवाह था । बुआ ससुराल से प्रमोद के लिए अनेक चीजें लाई थीं, परन्तु वह बुआ के मन का हाल जानना चाहता था । बुआ ने पहले दिन प्रमोद को इतना ही बताया कि ससुराल में उसका मन नहीं है और वह उसे शीला के यहां भेजना चाहती है । वह फिर हठपूर्वक लाई चीजें दिखाने और मर जाने की बात करने लगी । अगले दिन बुआ ने प्रमोद को एक पत्र देकर शीला के घर भेजा और पत्र शीला के भाई को ही देने की आज्ञा दी । शीला के भाई ने प्रमोद को प्यार किया । चाकलेट दी और एक चिटठी बुआ को देने के लिए उसकी जेब में रखते हुए कहा कि कह देना कि मैं एक महीने यहीं हूँ । प्रमोद ने रास्ते में पत्र खोला और माई डीयर की सुंदर लिखावट से बहुत प्रभावित हुआ । बुआ ने पत्र पढ़ा और बेबूझ भाव

से प्रमोद को देखते हुए उस पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर दिये । बुआ के दिल में आग लग गयी । उसने प्रमोद से कहा, यदि अब शीला के भाई का पैगाम आया तो मैं छत से गिरकर मर जाऊंगी, मुझे उन्होंने समझा क्या है !

बुआ को चार-पांच रोज के बाद ही ससुराल जाना था, परन्तु कोई उत्साह मालूम नहीं होता था । अगले रोज फूफा आने वाले थे । रात को बुआ की तबीयत गिरी-गिरी हो गई । बुआ ने एक कागज पर अंग्रेजी में दवा का नाम लिखकर प्रमोद को दिया और डाक्टरी पढ़ने वाले शीला के भाई के पास दवा लेने भेजा । शीला का भाई उस पुर्जे को लेकर बेचैन हो उठा । वह मृणाल को चलकर देखना चाहता था, परन्तु प्रमोद ने जीजी के छत से गिरकर मर जाने की धमकी बता दी । शीला के भाई ने क्रोधावेश में उस कागज के टुकड़े-टुकड़े कर डाले और उन सबको गुड़ी(मुड़ी करके प्रमोद की तरफ फेंकते हुए बोला,यह है दवा, जाओ, ले जाओ ।

अगले रोज फूफा आये । बुआ अस्वस्थ थी, परन्तु फूफा ने सफर की सुख-सुविधा का सारा प्रबंध कर लिया था । फूफा प्रेम के साथ बुआ को लिवा ले गए ।

विवाह के आठ-दस महीने के बाद बुआ एक नौकर को साथ लेकर घर चली आई । वह गर्भवती थीं । जी मिचलाना और खाना-पीना कुछ अच्छा नहीं लगता । प्रमोद के पुराने दिन लौट आए । अकेले में बैठकर दोनों की बातें होती । प्रमोद बुआ को अब न जाने देने को कहता और बुआ कहती, पहले क्यों नहीं रोक लिया था, अब क्या, कुछ नहीं हो सकता । बुआ को उसका पति बेंत से मारता था । वह अब अपने पति के पास जाना नहीं चाहती थी । फूफा ने बुआ पर कुछ आरोप भी लगाए थे । पत्र-व्यवहार के बाद तय हुआ, फूफा बुआ को ले जा सकते हैं और बुआ फिर कभी बिना फूफा की मर्जी के पीहर नहीं आयेगी । पिता ने बुआ को पति धर्म का उपदेश भी दिया, परन्तु बुआ जाना नहीं चाहती थी । इसके लिए वह मौत को भी अंगीकार करने को तैयार थी, लेकिन उसे जाना ही था । दूसरे दिन से बुआ प्रकृतिस्थ हो गई, जाने की तैयारी करने लगी, परंतु दोपहर बाद उसके सिर तथा पेट में दर्द होने लगा । प्रमोद से मंगवाकर उसने जमालघोटा पी लिया । तीन दिन हालत खराब रही । बस, गर्भ बच गया । फूफा आये और दुर्बल बुआ को ले गए । माता-पिता ने आशीर्वाद दिया । प्रमोद बुआ को रोक ना पाने के कारण क्रोध में भरकर कोठरी में

जा बैठा । बुआ ने बुलाया तो भागकर पहुँचा । बुआ प्रमोद के गले से लगकर ऊंची आवाज में रो उठी ।

बुआ के जाने के अनेक वर्ष तक प्रमोद का उससे कोई सम्पर्क न हो सका । प्रमोद अपने अध्ययन में लग गया और बुआ की याद धीरे धीरे धीमी हो गई । कुछ काल बाद प्रमोद को ज्ञात हुआ कि बुआ ने एक मृत कन्या को जन्म दिया था । प्रमोद ने इसके बाद माता-पिता से बुआ का हाल-चाल पूछा, परन्तु किसी ने कुछ नहीं बताया । प्रमोद को काफी बाद में मालूम हुआ, फूफा ने दुश्चरित्रा बुआ को छोड़ दिया है । फूफा ने उसे मैके भेजना चाहा परन्तु बुआ राजी नहीं हुई । इस पर फूफा ने उसे उसी शहर में एक अलग छोटे से घर में रख दिया ।

प्रमोद अब थर्ड ईयर में पढ़ता था । पिता का देहान्त हो चुका था । यूनिवर्सिटी से लौटते समय वह उस शहर में उतरा और बुआ को खोजता हुआ उसकी कोठरी में जा पहुंचा । बुआ उसे देखकर सहम गई । वह अब एक कोयले वाले दुकानदार के साथ रहती थी । पति-त्यक्ता होने के बाद इसी आदमी ने बुआ को भूखी मरने से बचाया था । बुआ ने भी उसे सब कुछ समर्पित करके पति के रूप में ग्रहण कर लिया था । बुआ ने पहले प्रमोद को चले जाने के लिए कहा, परन्तु उसे भूखा देखकर वह पिघल गयी । उसने तुरंत अपने आदमी को दही और बुरा लेने भेजा । खाते समय बुआ और प्रमोद में बातचीत हुई । प्रमोद बुआ को घर ले जाना चाहता था, परन्तु बुआ जानती थी, वह कैसे घर जा सकती है । बुआ ने प्रमोद को अपनी सारी कहानी बताई, शीला के भाई का पत्र पति को दिखाने पर किस प्रकार उन्होंने बुआ को दुश्चरित्रा कहकर घर से निकाला, भूख से मरते हुए किस प्रकार इस दुकानदार ने बचाया और परिवार त्यागकर साथ चला आया । बुआ जानती थी, यह आदमी भी उसे छोड़कर चला जाएगा और उसे फिर अकेले रहना पड़ेगा । बुआ ने दृढ़ता से कहा, वह फिर भी वेश्यावृत्ति नहीं करेगी । वह तन बेचकर धन लेने की सोच भी नहीं सकती । बुआ के पेट में इसी आदमी से गर्भ था, फिर भी वही उसकी विरक्ति चाहती थी कि वह उकताकर अपने घर चला जाए । उसे अब ईश्वर का ही एकमात्र सहारा था ।

प्रमोद का मन घबरा उठा । पतिगृह को त्यागकर गन्दे व्यभिचार में रहने वाली नारी को वह सुधार नहीं सकेगा । वह जाने को तैयार था कि बुआ पड़ोस के एक बालक को देखकर लौट आयी । प्रमोद ने बुआ को बताया कि उसके विवाह की बातचीत हो रही है और घर

पर मां ने बुलाया है । बुआ प्रमोद के विवाह में सम्मिलित होना चाहती थी, परन्तु वह सामाजिक मर्यादा को तोड़ना नहीं चाहती थी । वह प्रमोद की सहायता लेकर भी उच्च वर्ग में पुनः प्रतिष्ठित होना नहीं चाहती थी । बुआ ने एक तरह से प्रमोद को भी फिर आने के लिए मना कर दिया, क्योंकि वह उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा पर कोई आंच नहीं आने देना चाहती थी । प्रमोद ने बुआ को प्रणाम किया और तेजी से स्टेशन की ओर चल पड़ा ।

प्रमोद ने घर आकर मां से बुआ से मिलने की बात कही और उसे घर लाने का आग्रह किया । मां तैयार नहीं हुई । विवाह का प्रस्ताव प्रमोद ने अस्वीकार कर दिया । बी.ए. की परीक्षा निकट थी, परन्तु बुआ की पीड़ा एक गांठ-सी बनकर मन को मथ जाती थी । एक रोज प्रमोद बुआ के शहर जा पहुंचा, पर उस कोठी में अब बुआ नहीं थी । पास-पड़ोस तथा मिशन अस्पताल से उसे ज्ञात हुआ कि वह आदमी बुआ को मार-पीटकर छोड़कर भाग गया । कुछ समय बुआ इसी कोठरी में रही, फिर मिशन अस्पताल में उसने एक लड़की को जन्म दिया । बुआ नर्स बनकर रहना चाहती थी । परन्तु उसने इसके लिए बच्चा मिशन को देने तथा ईसाई बनना स्वीकार नहीं किया । प्रमोद वापस चला आया और पढ़ाई में लग गया । कुछ समय बाद उसके विवाह की बात फिर तय हुई । प्रमोद लड़की देखने के लिए अपनी भावी ससुराल पहुंचा तो उसने बुआ को डाक्टर साहब के बच्चों को पढ़ाते पाया । भावी सास ने बताया कि मास्टरनी पड़ोस में रहती है और बेवा है । बड़ी अच्छी और मिलनसार है । वह मास्टरनी को प्रमोद से मिलाना चाहती थी, लेकिन वह तैयार नहीं हुआ । हां, खुद शाम को बुआ मास्टरनी से मिलने उसके घर पहुंच गया । बुआ ने राजनन्दिनी की सुंदरता, सुशीलता की प्रशंसा की और विवाह कर लेने का सुझाव दिया । प्रमोद ने लड़की पसंद कर ली, लेकिन बुआ के मना करने पर भी उसने अपने ससुर डाक्टर साहब को बता दिया कि मास्टरनी उसकी बुआ है । प्रमोद ने सारी कथा सुना दी । डाक्टर साहब ने विवाह पर कोई आपत्ति नहीं की, परन्तु राजनन्दिनी की माता और बिरादरी के दबाव में उन्हें यह रिश्ता तोड़ना पड़ा । बुआ को नौकरी से हटा दिया गया । प्रमोद ने चिटठी-तार दिए, परन्तु बुआ वह जगह छोड़कर कहां चली गई, ज्ञात न हो सका ।

प्रमोद अब वकील हो गया था । मां मर गई थी और बुआ ने पहली बार प्रमोद को पत्र लिखा । बुआ अब भिखमंगों, चोरों, उच्चकों, अधेड़ वेश्याओं आदि के रहने वाली जगह में आ गई थी । बुआ ने अपने पत्र में लिखा, समाज की इस जूठन और दुर्जन लोगों की मंडली में रहकर भी दूध सी श्वेत सदभावना मिली है । यहां दुर्जनता, बेहयाई की कीमत है, सच्चरित्रता और सदाचार वाला आदमी यहां टिक ही नहीं सकता । बुआ ने प्रमोद को आने के लिए भी मना कर दिया, क्योंकि वह भद्र समाज के प्रति अपनी श्रद्धा को अमानुषिक अत्याचार के बाद भी तोड़ना नहीं चाहती थी । प्रमोद फिर भी बुआ से मिलने आया और उससे चलने का आग्रह किया । बुआ ने तो आसपास के स्त्री पुरुषों को छोड़कर जाने को तैयार हुई और न अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में रहकर इलाज कराने के लिए । बुआ ने उसका बहुत आग्रह देखकर रुपया मांगा जिससे उस नर्ककुंड को बदला जा सके । प्रमोद बुआ से नाराज होकर तथा स्थानीय वकील मित्र को कुछ रुपये देकर एवं ध्यान रखने का आग्रह करके चला आया । उसके बाद वह वकालत में चिपट गया और स्वार्थ साधना में लग गया ।

इसके सत्रह वर्ष बाद प्रमोद को बुआ के मरने की खबर मिली । वह अब जज हो गया था । आज उसे अपनी क्षुद्रता का स्वार्थपरता का बोध हुआ । बुआ ने इतना प्रेम किया और धन मांगने पर मैंने क्यों मुटठी भींच ली, सारा धन, सारी प्रतिष्ठा आज उसे मैल प्रतीत हुई जिसने आत्मा की ज्योति को ढंक लिया था । बुआ को बिना देखे सत्रह वर्ष निकाल देने के लिए उसने स्वयं को प्रताड़ित किया और जजी से त्याग पत्र देते हुए संसार में स्वल्पता से रहने का निश्चय किया ।

४.३ शीर्षक की सार्थकता

सर्वप्रथम उपन्यास के शीर्षक **त्यागपत्र** की सार्थकता पर विचार कर लेना उचित होगा । उपन्यास का शीर्षक अथवा उसका नामकरण मूल संवेदना से जुड़ा होना चाहिए । उपन्यास का केंद्रीय विचार एवं उसका मूल प्रतिपाध उसके नाम अथवा शीर्षक से व्यंजित होना आवश्यक है । त्यागपत्र की मूल कथा मृणाल की कथा है जो प्रमोद की दृषिट से देखी और वर्णित की गई है । कथा का मुख्य रूप से सम्बन्ध मृणाल और उसकी दर्दनाक कहानी से है, जज साहब और उनके भद्र समाज के वैभव एवं स्वार्थमय संसार से नहीं । परन्तु जज साहब के त्यागपत्र से यह भ्रम हो सकता है कि कथावाचक जज साहब ही उपन्यास के

प्रमुख पात्र हैं और उनकी कथा ही मुख्य कथा है । शीर्षक के सम्बन्ध में यह भ्रम जज साहब द्वारा लिखी इन पंक्तियों से सरलता से दूर हो जाता है, "बुआ, तुम गयीं, तुम्हारे जीते जी मैं राह पर न आया, सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूं । जगत का आरम्भ-समारम्भ भी छोड़ दूँगा । औंरों के लिए तो शायद रहना नये सिरे से मुझसे सीखा न जाए, आदतें पक गई हैं पर अपने लिये तो उतनी ही स्वल्पता से रहूंगा । जितना अनिवार्य होगा, यह वचन देता हूँ । भगवान, तुम मेरी बात सुनते हो, वैसे चाहे न भी दो, पर वचन तोड़ी तो मुझे नरक अवश्य ही देना । अपने त्यागपत्र के रूप में लिखी पंक्तियाँ ये बताती हैं कि जज साहब बुआ की मृत्यु का समाचार सुनकर आत्मग्लानि और पश्चाताप से भर जाते हैं । उन्हें बुआ के जीवन की दर्दनाक कहानी याद आती है और उसे राह पर न ला पाने का दुःख होता है । जज साहब को अब अनुभव होता है, उन्हें बुआ के लिए ही अपना जीवन जीना चाहिए था, उसकी दशा सुधारकर उसे पीड़ामय जीवन में सुख लाना चाहिए था । परन्तु वे पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए वैभवमय जीवन से, जजी से त्यागपत्र दे देते हैं । इस प्रकार इस त्यागपत्र के मूल में बुआ की दर्दभरी कहानी है और जज साहब की उपेक्षा और उदासीनता का पश्चाताप । जज साहब का त्यागपत्र स्वार्थ एवं वैभव से भरी दुनिया की असफलता का सूचक है और सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है । जज साहब त्यागपत्र देकर अपने पापों का बोझ हल्का कर लेते हैं, परन्तु मृणाल जैसी स्त्रियों की समस्या का कोई समाधान नहीं होता । त्यागपत्र जज साहब की व्यक्तिगत समस्याओं का तो समाधान है, लेकिन मृणाल की कहानी फिर समाज में नहीं दुहरायी जायेगी, इसकी ओर न तो जज साहब का ही ध्यान है और न लेखक ने ही समाज द्वारा अपनी व्यवस्थाओं, नारकीय जीवन की स्थितियों, पुरुष की निरंकुशता को त्याग देने की सम्भावना की ओर इशारा किया है । इस शीर्षक ने जो सबसे बड़ा कार्य किया है, वह मृणाल को ऊंचा उठा देने में है । समाज के द्वारा सतायी तथा गंदे एवं अपराधी समाज में रहने वाली मृगाल जज साहब के त्यागपत्र से इतनी ऊँची एवं गौरवमंडित हो गई है कि जज की कुर्सी पर बैठने वाले जज साहब और वैभवमय जीवन जीने वाला उनका समाज बौना हो गया है । जज साहब का त्यागपत्र यह संदेश देता है कि सम्पन्न एवं धनी समाज को तब तक स्वल्पता से रहना चाहिए जब तक समाज में बुआ जैसी स्त्रियाँ और उनको संरक्षण देने वाले अपराधी गंदे समाज का अस्तित्व विधमान है ।

४.४ कथा प्रस्तुत करने की नयी शैली

जैनेन्द्र कुमार हिन्दी उपन्यास में नयी भावभूमि के साथ कथा प्रस्तुत करने की नयी पद्धति एवं कलासंरचना का नया शिल्प लेकर आये । त्यागपत्र उपन्यास जज साहब की डायरी के रूप में लिखा गया है, जो हिन्दी की शिल्पविधि में अपने प्रकार का पहला प्रयोग है । लेखक ने उपन्यास के प्रारंभ में लिखा है, सर एम. दयाल, जो इस प्रान्त के चीफ जज थे और जजी त्यागकर इधर कई वर्षों से हरिद्वार में विरक्त जीवन बिता रहे थे, उनके स्वर्गवास का समाचार दो महीने हुए पत्रों में छपा था । पीछे कागजों में उनके हस्ताक्षर के साथ एक पांडुलिपि पायी गयी जिसका संक्षिप्त सार इतःस्त पत्रों में छप चुका है । उसे एक कहानी ही कहिए, मूल लेख अंग्रेजी में है । उसी का हिन्दी उल्था यहाँ दिया जाता है । कहानी में से स्थानों और व्यक्तियों के नाम और कुछ ऐसे ही ऐहिक विवरण अनिवार्य न होने के कारण बदला या कम कर दिये गए हैं । इस भूमिका से हिन्दी पाठकों तथा समीक्षकों ने यह मान लिया कि जैनेन्द्र कुमार को वास्तव में ऐसी कोई पांडुलिपि मिली है, जिसमें सर एम. दयाल ने अपनी बुआ की कहानी लिखी हुई थी । जैनेन्द्र जी की भ्रम उत्पन्न करने की यह चेष्टा बहुत समय तक नहीं चल सकी और एक दिन यह रहस्य खुल ही गया कि त्यागपत्र उनकी ही मौलिक रचना है तथा एम. दयाल एवं उनकी पांडुलिपि की प्राप्ति का उल्लेख आत्मरक्षा के लिए किया गया है । जैनेन्द्र कुमार ने, डा. देवराज उपाध्याय को लिखे 7 सितम्बर, 1968 के पत्र में इसका स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है, "आपके प्रदीप के नाम भेजे गये कागजों में प्रश्न है कि त्यागपत्र में आकर अपनी मौलिक कथा को दूसरे पर ढालकर मैंने क्यों उपस्थित करना शुरू किया । अंग्रेजी में या दूसरी किसी भाषा में ऐसा किया गया हो, तो मुझे पता नहीं था । त्यागपत्र से पहले सुनीता छपी थी । उस पर जो विवाद उपजा उसमें जैनेन्द्र के निजत्व को भी घसीट लिया गया था । तब सोचा कि आगे जो लिखूंगा उस के कर्तव्य में से अपने को हटा लूँगा । ऐसे लोग कृति से उलझेंगे, मुझे चैन से रहने देंगे । त्यागपत्र में उस विधि को अपनाने का सीधा कारण यह था । उपन्यास प्रस्तुत करने की यह भी एक विधि होती है, वह अधिक उमर्ष या सांकेतिक हो सकती है, इत्यादि इत्यादि की मुझे तनिक सुध न थी । और जैसा आपने लिखा है, त्यागपत्रा के कृतित्व को लेकर कुछ देर के लिए मुझे उस तरह की सुविधा अनुभव हुई थी । पर इधर आकर बात खुल

गयी है और आवश्यक नहीं है कि वह छल अब मेरी रक्षा कर सके । इससे आगे वह विधि शायद नहीं भी अपनायी जायेगी ।" जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ. 3, 4

जैनेन्द्र कुमार की इस दलील को स्वीकार किया जाय अथवा नहीं, इस पर विवाद न करके यह स्वीकार करना पड़ता है कि उन्होंने कथासंरचना एवं उसकी प्रस्तुति की एक नवीन विधि अपनाकर कथा के प्रति एक अटूट विश्वास और चमत्कार उत्पन्न कर दिया है । यह उनके शिल्पी होने का प्रमाण है कि पहली बार जिस नयी विधि को अपनाया, उसी में उन्हें महान सफलता प्राप्त हुई ।

प्रेमचन्द के सभी उपन्यास थर्ड पर्सन में लिखे गये हैं लेकिन जैनेन्द्र ने इस परम्परा को तोड़ते हुए त्यागपत्र उपन्यास की रचना फर्स्ट पर्सन (प्रथम पुरुष) में की है । प्रमोद अपनी आत्मकहानी के रूप में उपन्यास की कहानी कहता है और अपने दृष्टिकोण से कथा का वर्णन करता है । कथाकार ने सर्वज्ञता का शिल्प ग्रहण न करके प्रमोद की दृष्टि से कथा को प्रस्तुत किया है, जिसके कारण मृणाल की उतनी ही कथा सामने आती है जितनी प्रमोद अपनी आँखों से देखता है, और कानों से सुनता है । मृणाल के जीवन के शेष सभी प्रसंग एवं घटनाएँ पाठक की दृष्टि से ओझल बनी रहती हैं । इससे पाठक को असंतोष और विक्षोभ होता है, क्योंकि वह अदृश्य कहानी को भी जानना चाहता है । यह जानना चाहता है, मृणाल ने कोयले वाले को किस प्रकार अंगीकार किया और वह किस प्रकार अनेक वर्षों तक अपराधियों के बीच रही, परन्तु प्रथम पुरुषात्मक कथाशिल्प की पद्धति ने सारी कथा को प्रमोद के दृष्टिकोण तक सीमित करके मृणाल की पीड़ाजनक कहानी के असंख्य अध्याय अजन्मे ही रहने दिये हैं ।

कथावस्तु एवं उसके संगठनात्मक पक्ष के प्रति भी जैनेन्द्र कुमार का प्रेमचंद से भिन्न प्रकार का दृष्टिकोण रहा है । प्रेमचन्द ने पहली बार हिन्दी उपन्यास को एक सुसंगठित कथावस्तु का शिल्प प्रदान किया, परन्तु जैनेन्द्र ने इस

परंपरा को आगे न बढ़ाकर स्वयं एक नये शिल्प की उदभावना की । उन्होंने प्रेमचन्दीय चुस्त-दुरुस्त, संगठित, निरंतर विकसित होने वाली कथा वर्णन की स्थूल शिल्प विधि तथा सचेत कथा-विन्यास की प्रवृत्तियों का बहिष्कार किया । उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास परख की भूमिका में लिखा, "मैंने जगह-जगह कहानी के तार की कड़ियाँ तोड़ दी है । वहाँ

पाठकों को थोड़ा कूदना पड़ता है और मैं समझता हूँ पाठक के लिए थोड़ा अभ्यास वांछनीय होता है, अच्छा ही लगता है । कहीं एक साधाारण भाव को वर्णन से फुला दिया है, कहीं लम्बा सा रिक्त स्थान छोड़ दिया है, कहीं बारीकी से काम लिया है, कहीं-कहीं लापरवाही से हल्की धीमी कलम से काम लिया गया है, कहीं तीक्ष्ण और भागती से । कहानी के विन्यास को तोड़ना और पाठक से अधिक सावधानी एवं समझ की मांग करना जैनेन्द्र की अपनी शिल्प विधि है, जो कथा शिल्प को नया आयाम देती है । सुनीता में उन्होंने लम्बी-चौड़ी कथा एवं असंख्य पात्रों ने प्रेमचन्दीय धारणा को पूर्णत: अस्वीकार करते हुए उनकी भूमिका में लिखा, पुस्तक में मैंने कहानी कोई लंबी चौड़ी नहीं कही । कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है । अत: तीन चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल रहा है । जैनेन्द्र ने त्यागपत्र की रचना के क्षणों ने भी इसका बराबर ध्यान रखा है कि लम्बी-चौड़ी कथा से बचा जा सके और तीन-चार पात्रों का सीमित संसार ही रचना के धरातल पर उतर सके ।

त्यागपत्र की कथा यद्यपि प्रमोद (जज साहब) की आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत की गई है, परन्तु उसमें प्रमुखता मृणाल की जीवन-कहानी को ही मिली है । कथावाचक प्रमोद अपनी कथा कहने पर भी गौण हो जाता है और मृणाल पाठक को सीधे सम्बोधित न करके भी उपन्यास में आधोपांत छायी रहती है । प्रमोद कथा की रचना मृणाल की दर्दनाक मृत्यु के समाचार से करता है और उसके लिए स्वयं उत्तरदायी होने एवं उसके लिए पश्चाताप करने के निमित्त जजी से त्यागपत्र दे देता है । इस प्रकार उपन्यास का आरम्भ और अन्त मृणाल के जीवन से ही होता है ।

उपन्यास की कथा पाँच रूपों में सामने आती है:

(1) प्रमोद का घटना प्रसंगों का पात्र होना तथा बुआ से सम्बन्धित घटनाओं का साक्षी होना ।

(2) बुआ का घटित घटनाओं प्रसंगों को प्रमोद को बताना ।

(3) प्रमोद का अन्य सूत्र पड़ोसियों, मिशन अस्पताल आदि से घटनाओं की जानकारी मिलना ।

(4) बुआ का प्रमोद को पत्र लिखकर भिखमंगों, चारों, उचक्कों में बीच रहने की सूचना देना ।

(5) किसी अज्ञात सूत्र से प्रमोद को बुआ के देहान्त की जानकारी मिलना ।

इन सभी पाँचों विधियों से मृणाल की ही कथा प्रमुख रूप से सामने आती है । जिन स्थलों पर प्रमोद स्वयं एक पात्र है, किसी प्रसंग घटना में सीधे सामने आता है अथवा उसके विवाह, शिक्षा आदि की उसी से सम्बन्धित घटनाएं हैं, वहां भी मृणाल किसी न किसी रूप में उपस्थित रहती है और घटना उसकी विधमानता एवं उसके प्रभाव से बच नहीं पाती । प्रमोद का विवाह टूटना, जजी से इस्तीफा देना आदि के मूल में मृणाल ही बैठी हुई है । उपन्यास की जो घटनाएँ प्रमोद और मृणाल के परस्पर साहचर्य में घटित होती हैं तथा जिन घटनाओं का स्वयं प्रमोद साक्षी है, वे यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक हैं । मृणाल का प्रमोद को बार बार भींचना तथा छाती से चिपकाना उसकी अतृप्त यौवनाकांक्षा का सूचक है, क्योंकि वह शीला के भाई से प्रेम करके भी मिल नहीं पाती, चाहकर भी उसका संसर्ग प्राप्त नहीं कर पाती । कथा के अनेक सूत्र उस समय खुलते हैं तथा मृणाल के साथ घटित घटनाओं की उस समय जानकारी मिलती है, जब मृणाल प्रमोद से मिलने पर उन्हें बताती है । मृणाल का पति को प्रेमप्रसंग बताना, पति का दुश्चरित्रा कहकर घर से निकालना, कोयले के व्यापारी द्वारा मृणाल को बचाने का प्रसंग आदि अनेक कथा के सूत्र घटित होने के पश्चात ही सामने आ सके हैं, क्योंकि मृणाल प्रमोद से मिलने पर इनकी जानकारी देती है । कथा के कुछ अंतराल मृणाल के पड़ोसियों तथा मिशन अस्पताल से ज्ञान सूचनाओं से भर जाते हैं और मृणाल की कथा में एक निरन्तरता दिखायी देने लगती है । मृणाल की कथा से जब प्रमोद का सम्पर्क टूट जाता है, तब लेखक ने मृणाल से प्रमोद को पत्र लिखवाकर उसे पुनः जोड़ने का प्रयत्न किया है । मृणाल का प्रमोद को पत्र लिखना स्वाभाविक नहीं लगता, क्योंकि वह बराबर उससे दूर रहना चाहती है ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि त्यागपत्र का कथा-शिल्प यथार्थ, मनोवैज्ञानिक एवं जीवन्त है । कथा का विकास प्रेमचन्द के उपन्यासों के समान निरंतर विकसित एवं घटित नहीं होता, बल्कि कथा के बीच-बीच में अनेक अन्तराल छूट जाते हैं और पाठक को काफी समय के बाद उन अंतरालों के बीच में घटित घटनाओं का ज्ञान हो पाता है । इससे कथा संगठन एवं एक सूत्र में आबद्धता बिखर नहीं पायी है, क्योंकि सभी घटनाओं के मूल

में मृणाल विधमान है और प्रमोद के प्रसंग उसी से सम्बद्ध हैं । कथा में एक दो संयोगपूर्ण घटनाएँ भी हैं, जैसे मास्टरनी के रूप में मृणाल का मिलना, परन्तु ऐसे संयोग जीवन में भी मिल ही जाते हैं । कथा का एक तो पात्रों से सीधा और गहरा सम्बन्ध होने के कारण आधोपांत पाठक के मन में मृणाल की विषाद एवं दर्दभरी तस्वीर बनी रहती है और प्रमोद द्वारा जजी से इस्तीफा देने के बाद तो विषाद की रेखाएं चारों ओर से उसे घेरे लेती हैं ।

४.५ संवेदना का स्वरूप

त्यागपत्र की कहानी मृणाल के दर्दनाक जीवन से सम्बन्धित है । यधपि एम. दयाल अपनी आत्मकथा के रूप में कहानी का वर्णन करते हैं, परन्तु इस कहानी के केन्द्र में समाज की रूढ़ियों, कठोर नैतिक मान्यताओं एवं अमानवीय सामाजिक व्यवस्था द्वारा पीड़ित मृणाल की दर्दभरी कहानी रही है । उपन्यास की मूल संवेदना मृणाल के जीवन के चित्रों को ही प्रस्तुत करती है और दयाल भी उतनी ही कथा कहते हैं जितनी मृणाल से सम्बन्धित है । मृणाल का जीवन मूल बिन्दु है, उसके जीवन की घटनाएँ सर्वत्र छायी रहती हैं और न्यायाधीश दयाल अपने जीवन की महत्त्वकांक्षाओं के साथ मृणाल के जीवन को सामने रखकर सोचते और निर्णय लेते हैं । मृणाल के जीवन की त्रासदी व्यक्ति और समाज की टकराहट और संघर्ष से उत्पन्न होती है । व्यक्ति अपने अनुसार, अपनी भावनाओं के अनुसार अपना मार्ग तय करना चाहता है । परन्तु समाज उसे अपने नियमों, बन्धनों में जकड़े रखना चाहता है । मृणाल शीला के भाई से प्रेम करती है, उसके घर जाती है और इसी कारण अपने घर विलम्ब से आती है, परन्तु उसकी भाभी इस स्वच्छन्दता पर बेंतों से मारते-मारते उसे बेहोश कर देती है । मृणाल की कहानी का यह आरम्भ है । मृणाल भाभी के सम्मुख आत्मसमर्पण कर देती है, प्रेमी को भूलने की चेष्टा करती है । भाभी मृणाल की समस्या से बच निकलने के लिए एक आसान रास्ता चुनती है । वह एक अधेड़ दोहाजू से उसका विवाह कर देती है और कोमल कली कुचल दी जाती है । मृणाल अपने प्रेम को भूलकर पति के साथ निश्छल भाव से रहना चाहती है, लेकिन पति उसे दुश्चरित्रा समझकर बेतों से मारता है । मृणाल अपने भाई-भाभी के यहां चली आती है, परन्तु सामाजिक मान्यताएं एवं व्यवस्थाएँ उसे पीहर में नहीं रहने देतीं । उसे हर दशा में अपने पति के पास ही रहना होगा । पति उसे ले जाता है न चाहकर भी उसे जाना पड़ता है । अन्त में पति उसे घर से निकाल देता है । अब सामाजिक व्यवस्थाएँ मृणाल की रक्षा नहीं

कर पातीं और वह अकेली जीवन मृत्यु के झूले में झूलने लगती है । तब एक कोयले वाला उसकी सुन्दरता देखकर उसकी रक्षा करता है और अपने परिवार को त्यागकर मृणाल के साथ रहने लगता है । मृणाल भी सामाजिक मर्यादाओं की उपेक्षा करके जीवनदान देने वाले व्यकित को पति रूप में स्वीकार कर लेती है लेकिन यह व्यक्ति भी धोखा देकर, सारी पूँजी लेकर मृणाल को अकेली छोड़कर भाग जाता है । मृणाल के मिशन अस्पताल में कन्या उत्पन्न होती है और फिर वह अकेली जीवन रक्षा के उद्योग में लग जाती है । समाज फिर उसकी रक्षा के लिए नहीं आता और उसकी लड़की शीघ्र ही मर जाती है । उसमें जीवित रहने की आकांक्षा फिर भी समाप्त नहीं होती और वह मास्टरनी बनकर अपना पेट पालती है । यहां फिर समाज उसका पीछा नहीं छोड़ता । उसे यहां से भी भागकर अपराधियों, चोरों और उचक्कों के बीच में रहना पड़ता है जहाँ वह मृत्युपर्यन्त रहती है । यहाँ वह भद्र समाज की मान्यताओं, नियमों से दूर रहने के कारण ही स्थान पर 16-17 वर्षों तक रह सकी ।

मृणाल की यह कहानी मुख्यरूप से समाज द्वारा उसके अस्तित्व को ही निगल जाने तथा उसकी अदम्य जिजीविषा, जीवनाकांक्षा की कहानी है । समाज के नियम, मर्यादा, परम्परा, रूढ़ि, नैतिक बन्धन अनेक बार उसे मूल पारिवारिक धुरी से उखाड़ फेंकते हैं परन्तु वह सदैव जीवन-शक्ति के छोर को पकड़े रहती है । वह अन्त तक टूटती चलती है, परन्तु इस भद्र समाज को छोड़ना नहीं चाहती । वह स्वयं भी उसकी मंगल-कामना करते हुए टूट जाना चाहती है । समाज से टूटने एवं पीड़ा पाने पर भी उसकी करुणा जीवित रहती है । वह अपने हृदय की सम्पूर्ण करुणा समाज के उस वर्ग पर बिखेर देती है, जिसे भद्र समाज अपनी जूठन समझता है । वह स्वयं अनेक वर्षों तक चोरों, उचक्को, अपराधियों के इस समाज में रहती है और उसे अपनी संपूर्ण भावना से अंगीकार कर लेती है । वह प्रमोद के साथ जाकर उच्चवर्ग का जीवन जीने को तैयार नहीं होती, क्योंकि उसे जो सदभावना यहां मिलती है, उससे भद्र समाज में वह सदैव वंचित रही है और सदैव छली गयी है । मृणाल की यह विचार दृष्टि उसकी घनीभूत पीड़ा को उदात्त बना देती है तथा उसकी संवेदनाओं का धुआँ चमकने लगता है ।

उपन्यास के अन्त में एम. दयाल का त्यागपत्र इस संवेदना को और भी घनीभूत बना देता है । सभ्य-समाज में रहनेवाले जज साहब त्यागपत्र पर सही लगाकर वास्तव में यह

स्वीकार लेते हैं कि उनके समाज की व्यवस्था, मर्यादा, आदर्श सभी खोखले हैं एवं वह छल, प्रपंच, शोषण तथा दमन पर आधाारित है । ऐसा कुर समाज ही मृणाल जैसी प्रेममयी, त्यागमयी, सेवामयी स्त्री का हन्ता है । जज साहब अपने त्यागपत्र के साथ सभ्य समाज को भी त्याग देते हैं और पुनः उसमें प्रवेश न करने की प्रतिज्ञा लेते हैं । जज साहब के त्यागपत्र से मृणाल की व्यथा कथा और भी घनीभूत हो जाती है और पाठक के मन पर मर्मस्पर्शी प्रभाव अंकित कर देती है । मृणाल की पतितावस्था एवं व्यथा-कथा उपन्यास में आधोपांत तीव्र से तीव्रतर तथा निरन्तर घनीभूत होती जाती है और संवेदना की धार पाठक के हृदय को चीर कर रख देती है ।

४.६ त्यागपत्र की नायिका मृणाल

त्यागपत्र नायिका प्रधान उपन्यास है । उपन्यास का कथावाचक यधपि प्रमोद है परन्तु वह गौण पात्र बनकर ही आता है । डा. नगेन्द्र ने प्रमोद को नायिका (मृणाल) के बढ़ते हुए दर्द का ताप-मापक कहकर पुकारा है जो अन्ततः त्यागपत्र के रूप में भंग हो जाता है । प्रमोद के अनेक रूप उपन्यास में आये हैं, वह कथावाचक है, बुआ के साथ घटित अनेक घटनाओं का साक्षी है, बुआ द्वारा अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन करते समय वह श्रोता के रूप में आता है, तथा अन्त में बुआ के दर्दनाक एवं पीड़ामय जीवन के अन्त के लिए स्वयं को दोषी समझकर त्यागपत्र देकर संन्यासी हो जाता है । तात्पर्य यह है कि प्रमोद का समग्र व्यक्तित्व मृणाल से सम्बद्ध है । मृणाल के जीवन की वेदना एवं शोषण के साथ-साथ उसके मन की टीस और वेदना भी बढ़ती जाती है अन्त में प्रमोद जान लेता है कि जमा हुआ दर्द मानस की मानस-मणि है, और उसके प्रकाश में मानव का गतिपन्थ उज्जवल होगा । मन का दर्द पीयूष है, सत्य का निवास और कहीं नहीं है । उस दर्द की साभार स्वीकृति में से ज्ञान का और सत्य की ज्योति प्रकट होगी । अन्यथा सब ज्ञान ढकोसला है और सब सत्य की पुकार, अहंकार है । वह प्रेम की पीड़ा से अभिभूत तथा जगत की कठोरता का बोझ स्वेच्छापूर्वक उठाकर धरती माता की गोद में सो जाने वाले व्यक्तियों को प्रणाम करता है ।

प्रमोद अनेक बार अपनी बुआ के उद्धार की चेष्टा करता है । वह समाज की जूठन एवं अपराधियों के बीच से बुआ को निकालकर सभ्य समाज में लाना चाहता है, परन्तु तथाकथित सभ्य समाज के अवगुणों के कारण वह पूर्णरूप से बुआ के प्रति समर्पित नहीं हो पाता और रोगिणी बुआ के खर्चे के लिए कुछ रुपये एक वकील के पास छोड़कर चला

आता है । श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रमोद और मृणाल के चरित्रों की तुलना करते हुए ठीक ही लिखा है, "प्रमोद की उच्चाभिलाषा, उसकी सहानुभूति, आदर्शवादिता और जजी भी मृणाल की विद्रोही ज्वाला और ज्योति के समक्ष निष्प्राण और अर्थहीन है । मृणाल कर्मण्यता और अनुष्ठान की प्रतीक है, प्रमोद केवल सदभिलाषा का उदाहरण है । एक में समर्पण और बलिदान की पुकार है, दूसरे में एक थोथे गौरव का वृथा संसार ।. (आधुनिक साहित्य, पृ. 168)

मृणाल जैनेन्द्र के सम्पूर्ण नारी पात्रों में एक विशिष्ट अविस्मरणीय पात्र है । मृणाल से पूर्व उन्होंने परख में कटटो, तथा सुनीता उपन्यास में सुनीता के चरित्रों की उदभावना की थी । इन दोनों ही नारी पात्रों में पत्नीत्व एवं प्रेयसीत्व का संघर्ष प्रस्तुत किया गया है, परन्तु इसके पश्चात रचित उपन्यास 'त्यागपत्र की नायिका मृणाल में पत्नीत्व एवं प्रेयसीत्व का पूर्व नारी पात्रों के समान संघर्ष नहीं है । यधपि मृणाल भी प्रेयसी के रूप में चित्रित की गयी है परन्तु उसके जीवन में पत्नी और प्रेयसी का कोई द्वंद्व नहीं है । हाँ, उसका प्रेयसी रूप उसके जीवन की धारा को बदल देता है । मृणाल के मन में शीला के भाई के प्रति एक मधुर आकर्षण उत्पन्न होता है । वह उसके घर जाती है और देर से लौटती है । वह घर आकर यौन भावना की तीव्रता के कारण प्रमोद को भींचती है, उसके मुख को छाती के घोसलें में छिपा लेती है । इन क्रियाओं से प्रमोद के प्रति उसके प्रेम में कोई मानसिक विपर्यय नहीं समझना चाहिए । इससे वह अपनी यौनाकांक्षा को घरेलू व्यवहार से तृप्त करने की चेष्टा मात्र करती है, जो अनैतिक की गहराई तक नहीं पहुंच सका है । मृणाल प्रेयसी के रूप में सारे अनुभव प्राप्त नहीं कर पाती कि उसका विलम्ब से आने का रहस्य खुल जाता है और भाभी बेंत से उसकी निर्मम पिटाई करती है । उसका शीघ्रता से एक दुहाजू प्रौढ़ के साथ विवाह कर दिया जाता है । वह पति के साथ समूची वफादारी के साथ रहती है और एक दिन शीला के भाई का पत्र आने का प्रसंग बता देती है । उसका पति विवाह पूर्व के प्रेम प्रसंगों को सुनकर उसे घर से निकाल देता है । इस प्रकार मृणाल को प्रेयसी बनने का, चाहे उसका प्रेम पूर्णता तक न पहुँच सका था, दंड भोगना पड़ता है । उसका पत्नीत्व खंडित हो जाता है और उसे अन्य पुरुष की प्रेयसी बनकर उसके साथ पत्नी का धर्म निभाना पड़ता है । वह भी अन्त में इन दोनों स्थितियों से स्वयं को मुक्त करके अपराधियों की बस्ती में रहते हुए उनके ही जीवन का एक अंग बन जाती है ।

उपन्यास में मृणाल के जीवन के अनेक रूप सामने आते हैं । वह सर्वप्रथम प्रमोद की बुआ है, भाई की बहन और भाभी की ननद है, फिर शीला के भाई की प्रेयसी, दुहाजू की पत्नी के रूप में हमारे सामने आती है । पत्नी बनने के पश्चात वह एक पतित्यक्ता पत्नी और फिर कोयले वाले की रखैल के रूप में सामने आती है । अन्त में वह एक निस्सहाय व्याधि पीड़ित नारी है जो परिवार से दूर, अपराधियों, चोरों, उचक्कों के समाज में रहती हुई अन्त में मर जाती है । मृणाल के चरित्र की यह गति अत्यन्त वक्र है और वह भविष्य में किस रूप में बदलकर सामने आयेगी, पहले से ज्ञान नहीं होता । वह जिस नयी परिस्थिति में जुड़ती है, उसे वह सम्पूर्ण मन से अंगीकार करती है, परन्तु परिस्थितियाँ उसे जुड़ने नहीं देतीं और जुड़ने और टूटने का यह क्रम अन्त तक चलता रहता है । मृणाल के चरित्र की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह टूटने के समग्र दर्द को पीते हुए नयी आस्था एवं विश्वास के साथ नयी परिस्थितियों से जुड़ती चली जाती है । वह टूटने की घोर यंत्रणा को इस सहजता से सहेज लेती है कि पाठक विषपान की उस अदम्य शक्ति को देखता रह जाता है । डा. देवराज उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है कि यह मानवता है जो हृदय में सारी व्यथा और वेदना की चिंगारी रखकर सारी परिस्थितियों को झेलते हुए तप्त कंचन की तरह शुद्ध ही रहती है ।

मृणाल सभी ओर से परित्यक्त होकर भवितव्यवश जीवन का नया अध्याय आरंभ करती है । वह अंधकारपूर्ण परिस्थितियों में आशा की किरण और साधना का सम्बल ईश्वर के सहारे प्राप्त करती है । वह कहती है, क्या होगा? भगवान ही जानता है, क्या होगा? और कोई दूसरा सहारा नहीं है । पर भगवान सर्वान्तर्यामी है, सर्वशक्तिमान है । मुझे कोई और सहारा क्यों चाहिए । उसका कोयले वाले के साथ भागकर रहने और उसे पतिरूप में स्वीकार कर लेने में ऊपरी तौर पर व्यभिचार दिखाई देता है, परन्तु वह उसकी अनुरक्ति को देखकर उसकी सेवा में लग जाती है और अपनी सम्पूर्ण निधि उसे सौंप देती है । मृणाल का अब कोई अलग अस्तित्व नहीं होता । वह प्रमोद से कहती भी है, पति...! मैं नहीं जानती, लेकिन मेरा अस्तित्व मेरे लिये नहीं है । इस समय तो मैं उस पुरुष की सेवा के लिए हूं । इस प्रकार मृणाल की परपुरुष संगति, सामाजिक दृष्टि से अनैतिक और पाप होने पर भी, वह उसे उच्चतम आदर्शों से मंडित कर देती है । श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस सम्बन्ध में लिखा है, जो कार्य साधारण परिस्थिति में निंध और पतनोन्मुख समझे जाते हैं, मृणाल उन्हीं कार्यों की डोरी पकड़कर उच्चतम आदर्श पर पहुँच जाती है । उसका

व्यभिचार उसकी साधना है, उसकी परपुरुष संगति उसकी जीवन-सेवा है । जीवन-यापन के लिए व्यभिचार की आवश्यकता के सम्बन्ध में किसी को भी सन्देह हो सकता है, परन्तु लेखक इसे असाधारण संचेतन संकल्प का स्वरूप देकर अपनी सम्पूर्ण श्रद्धांजलि भेंट करता है । मृणाल की यह निस्वार्थता, सेवा भावना, उस समय अपनी सर्वोच्चता पर पहुँच जाती है, जब प्रमोद उसे 'उचिछष्ट वर्ग से निकालकर सभ्य समाज में ले जाना चाहता है और वह अपने कर्तव्य के सम्मुख समस्त सुख सुविधा को तुच्छ समझती हुई कहती है, 'सहायता का हाथ देकर क्या मुझे यहाँ से उठाकर ऊँचे वर्ग में जा बिठाने की इच्छा है । तो भाई, मुझे माफ कर दो, मेरी वैसी इच्छा नहीं है । मृणाल का इसी उचिछष्ट समाज में रहते हुए अन्त में मर जाना, उसे एक महान चरित्र बनाने के लिए पर्याप्त है ।

मृणाल के चरित्र की कुछ और विशेषताएँ भी उल्लेखनीय हैं । उसमें व्यक्ति चेतना एवं अहम्मन्यता सर्वत्र दिखाई देती है । उसका अहं अनेक बार आहत होता है, सिसकता है, परन्तु वह उसे अन्त तक खंडित होने से बचाये रखती है । मृणाल यौन अतृपित से भी पीड़ित है । वय:संधि में पर्दापण करती हुई मृणाल का शीला के भाई से प्रेम हो जाता है, परन्तु भाभी की बेंत खाकर दमित हो जाता है । मृणाल को पतिगृह से भी यौनतृप्ति नहीं मिल पाती और अन्नत: यौन अतृप्ति विस्फोटक बन जाती है । वह अन्य पुरुष से दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित कर लेती है और प्रलाप में कहती है, 'तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूँ । तन दे सकूँगी । शायद यह अनिवार्य हो ।...दान स्त्री का धर्म है । वह चिड़िया के समान आकाश में स्वच्छन्द विचरण करना चाहती है । अन्त में वह यौनअतृप्ति की भावना का उदात्तीकरण करके समाजोन्मुख कर देती है और उचिछष्टों के बीच में रहने लगती है । मृणाल के चरित्र में सामाजिक विद्रोह एवं सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार करके चलने की परस्पर विरोधी प्रवृत्ति भी विधमान है । वह सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करती है और भावुकता के प्रवाह में बहती हुई अपने ही तर्कों से स्वयं को समझा लेती है । साथ ही वह सामाजिक व्यवस्था को तोड़ना भी नहीं चाहती । वह कहती है, मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती हूँ । समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में स्वयं टूटती रहूँ । मृणाल का यह निरन्तर टूटना और टूटते हुए जीवन को निरन्तर जीने की दुर्दम्य आकांक्षा एवं संकल्प उसके चरित्र का मूल मंत्र है । डा. देवराज उपाध्याय ने मृणाल की कहानी को वज्र हृदय को भी हिला देने वाली ट्रेजेडी कहा

है, परन्तु यह भी सत्य है कि मृणाल की कथा अदभुत जिजीविषा, भयंकरतम परिस्थितियों से समरस होकर जीवित रहने की अटूट आकांक्षा रखने वाली नारी की कहानी है ।

४.७ त्यागपत्र में निहित चेतना

दार्शनिक चेतना

जैनेन्द्रकुमार हिन्दी के एक ऐसे कथाकार है जिनके कथाकार की चिन्तनधारा एवं दार्शनिक चेतना को लेकर पर्याप्त मात्रा में विचार हुआ है । प्रेमचन्द ने कथासाहित्य को सामाजिकता एवं उद्देश्यप्रधानता से सम्बद्ध करके हिन्दी उपन्यास को विकसित किया और जैनेन्द्र कुमार ने अपनी चिन्तनशीलता तथा दार्शनिकता की दृष्टि से अन्तर्मन की गूढ़ताओं को विश्लेषित करने की प्रवृत्ति से हिन्दी उपन्यास में स्थल सामाजिकता के स्थान पर व्यक्ति के जीवन का सूक्ष्म एवं उलझी मनःस्थितियों, जटिलताओं, क्रिया प्रतिक्रियाओं, घात प्रतिघातों की व्यापक अभिव्यक्ति का द्वार खोला । इसी कारण एक समीक्षक ने उनके औपन्यासिक कृतित्व को उनके दार्शनिक चिंतन की प्रयोगशाला तक कह दिया है । वास्तव में, जैनेन्द्र के उपन्यासों में चिंतन और कथाकार दोनों इतने प्रधान हैं कि उनमें प्रमुख एवं गौण का निर्णय कर पाना कठिन ही है । फिर, कथा साहित्य का मूल्यांकन और कथाकार का विश्लेषण पहले कथाकार के रूप में ही होना चाहिए, चाहे वह कितना ही सशक्त विचारक और दार्शनिक ही क्यों न हो । डा. विजयेन्द्र स्नातक ने इस स्थिति को दूसरे रूप में प्रस्तुत किया है । उनका विचार है कि जैनेन्द्र की रचनाओं में संवेदना गौण और विचार प्रधान हो गया है । डा. स्नातक ने लिखा है, जैनेन्द्र की रचना का उत्स विचार से होता है । विचार और अनुभव के बीच की खाई जैनेन्द्र जिस रूप में पाटते हैं, वह साधारण लेखक से भिन्न कोटि की पद्धति है । जैनेन्द्र का विचार पक्ष इतना प्रबल है कि वे अनुभव की कसौटी की उपेक्षा करते हुए अपने तर्कजाल को फैलाते चलते हैं । इस प्रकार उनकी सृष्टि में विचार का ताना बाना ही लक्षित होता है, अनुभूति के लिए गुंजाइश कम ही रह जाती है । . कहानी अनुभव और शिल्प, जैनेन्द्र कुमार डा. स्नातक द्वारा लिखित भूमिका से, पृ. 14)

डा. स्नातक की यह उक्ति त्यागपत्र की संवेदना तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि को देखते हुए थोड़ी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होती है । त्यागपत्र में जैनेन्द्र का चिंतक कथाकार पर हावी नहीं हो सका है और न संवेदना ही दर्शन की तुलना में गौण हो गयी है । इस उपन्यास में

संवेदना और दर्शन, कथाकार और दार्शनिक, एक दूसरे का आलिंगन करते हुए दृष्टिगत होते हैं । उपन्यास की दार्शनिक चेतना में पीड़ा, प्रेम, अहिंसा एवं करुणा दर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसमें से मृणाल का जीवन डूबता उतराता रहा है ।

उपन्यास की मुख्य दार्शनिक भित्ति पीड़ा एवं अन्तर्व्यथा के दर्शन पर आधारित है । मृणाल लेखक के अन्य स्त्री पात्रों कटटो (परख), सुनीता (सुनीता), कल्याणी (विवर्त), इला (जयवर्द्धन), नीलिमा (मुक्तिबोध), वसुन्धरा (अनामस्वामी) आदि के समान पीड़ा की साक्षात प्रतिमूर्ति है । पीड़ा और व्यथा का यह दर्शन उपन्यास में सर्वत्र व्याप्त है । प्रमोद चिंतन के क्षणों में सोचता है कि मानव जीवन का सार दर्द है । मनुष्य के मन में जमा हुआ दर्द ही उसकी मानस मणि है और उसके प्रकाश में ही मानव का गतिपन्थ उज्ज्वल होगा । मृणाल का जीवन इसी दर्द और व्यथा का पर्याय बन गया है । मृणाल का सम्पूर्ण जीवन अपने कृत्यों तथा परिस्थितियों की विपरीतता के कारण पीड़ामय बन जाता है । वह दूसरों के निर्णय पर तथा उन्हें पीड़ा से बचाने के लिए उनके मार्गों से हटकर स्वयं पीड़ा के रास्ते से गुजरती चलती है । साथ ही वह अपनी पीड़ा एवं व्यथा को विस्मृत करके अन्यों की पीड़ा को अपनाकर उन्हें पीड़ा से मुक्त करने में लग जाती है । मृणाल का इस प्रकार स्वयं पीड़ा को पर पीड़ा में मिला देना, प्रमोद की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए जीवन पर्यन्त नरक कुंड में बने रहना उसे एक महान चरित्र बना देता है । तभी प्रमोद मृणाल के लिए लिखता है, जो जगत की कठोरता का बोझ इच्छापूर्वक अपने ऊपर उठाकर चुपचाप चले चलते, और फिर समय आने पर इस धरती माता से लगकर चुपचाप सो जाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ । मैं उन्हें अभागा भी कह लूँगा, पापी भी कह लूँगा,लेकिन मैं उनको प्रणाम करता हूँ ।

त्यागपत्र में प्रेम के विविध पक्ष देखने को मिलते हैं । मृणाल शीला के भाई से प्रेम करती है और विवाह हो जाने के पश्चात पति से पूर्व प्रेम की सारी घटना बता देती है, जिसका उसे दंड भोगना पड़ता है । मृणाल को अपने पवित्र एवं निश्छल प्रेम का प्रतिदान यातना और पीड़ा के रूप में मिलता है । मृणाल प्रमोद से हार्दिक प्रेम करती है । प्रमोद बुआ के प्रेम की पवित्रता उसकी मृत्यु के पश्चात ही जान पाता है । उसे दुख है, वह प्रेम का प्रतिदान क्यों नहीं कर सका । वह उस प्रेम को किसी प्रकार भुला नहीं सका । वह सोचता है, वह प्रेम स्वयं में इतना पवित्र नहीं है कि स्वर्ग के द्वार उसके समक्ष खुल जायें? जैनेन्द्र

का यह प्रेम दर्शन प्राणी मात्र के प्रति करुणा, अहिंसा, दया, ममता आदि अन्य भावों को भी साथ लेकर चलता है । मृणाल समाज के सभी अत्याचारों को सहन करती हुई उसके बने रहने की कामना करती है । उसका आक्रोश एवं विद्रोह कहीं भी समाज को तोड़ने के लिए व्यक्त नहीं हुआ है और न प्रमोद ही विद्रोह का मार्ग चुनता है । वह भी इस्तीफा देकर संन्यास ग्रहण कर लेता है ।

सामाजिक चेतना

प्रेमचन्द की सामाजिक चेतना एवं उनकी सुधारवादी प्रवृत्ति को देखते हुए जैनेन्द्र व्यक्तिवादी, मनोजगत एवं मनोविश्लेषण के कलाकार हैं, परन्तु वे अपने उपन्यासों में सामाजिकता का दामन छोड़ नहीं पाये हैं । यह सत्य है कि उनकी सामाजिकता प्रेमचन्द के समान मर्यादा, नीति, पाप पुण्य एवं श्लीलता अश्लीलता पर आधारित नहीं है और न स्थूल तथा सुधारवादी है । जैनेन्द्र की सामाजिक चेतना व्यक्ति को केन्द्र में रखकर चलती है । व्यक्ति का अन्तर्मन, उसकी पीड़ा और अन्तर्द्वन्द्व, जहाँ-जहाँ समस्याओं एवं प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों से उदभूत होता है, वह प्रेमचन्द के समान समाधान की तलाश के लिए नहीं है । प्रेमचन्द ने शोषण, अत्याचार पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को तोड़कर नयी व्यवस्था, नये समाधान ढूंढ़ने का आह्वान किया, परन्तु जैनेन्द्र प्रेमचंद के समान प्रगतिशील नहीं बन सके । त्यागपत्र की मृणाल उस सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार करती है, जिसने कुर पंजों के नीचे उसके अस्तित्व को दबा रखा था । वह स्वयं टूट सकती है, परन्तु समाज को छिन्न भिन्न करने को तैयार नहीं है । वह कहती है, "मैं समाज को तोड़ना फोड़ना नहीं चाहती हूँ, समाज टूटा कि फिर किसके भीतर बनेंगे । वह प्रमोद को भी विद्रोह पथ पर चलने के लिए मना करती है । उसका कथन है, जो समाज में है, समाज की प्रतिष्ठा कायम रखने का जिम्मा भी उन पर है । वह उनका कर्तव्य है । जो उसके उचिछष्ट हैं या उचिछष्ट बनना पसंद कर सकते हैं । उन्हीं को जीवन के साथ नये प्रयोग करने की छूट हो सकती है । यहां आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की इस टिप्पणी से सहमत हुआ जा सकता है कि जैनेन्द्र के इस 'तत्त्वज्ञान को समझना साधारण बुद्धि के बूते की बात नहीं है ।

त्यागपत्र में स्वच्छन्द प्रेम, आर्थिक विपन्नता, बदलते हुए जीवन मूल्य, सामाजिक रूढ़ियों एवं मर्यादाओं का दबाव, आत्मपीड़क जीवन दर्शन, पतिव्रत धर्म के प्रति विद्रोह, अनमेल

विवाह, झूठी मान प्रतिष्ठा आदि विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है । इन समस्याओं को प्रस्तुत करने में लेखक की दृष्टि मुख्य रूप से वैयक्तिक स्तर पर अभिव्यक्त करने की रही है, प्रेमचन्द के समान सामाजिक स्तर पर नहीं । मृणाल अकेली सर्वत्र समस्याओं से जूझती है और वैयक्तिक स्तर पर उनका समाधान तलाश करती है । समस्याओं के चित्रण में जैनेन्द्र कुमार ने अनेक स्थानों पर पर्याप्त एवं अस्पष्ट निरूपण किया है । आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने अपने विवेचन में ठीक ही लिखा है कि उपन्यास में समस्या का अस्पष्ट निरूपण हुआ है । मृणाल को अनेक पतियों की भोग्या चित्रित करना, संस्कारहीन मृणाल का समाज साधना एवं रचना की अयोग्यता, उसका अर्थहीन आत्मपीड़न तथा भावनामूलक दार्शनिकता उपन्यास में न तो किसी विशिष्ट समस्या का चित्रण करते हैं और न कोई व्यावहारिक जीवन-दर्शन ही दे पाते हैं । मृणाल जिन सामाजिक परिस्थितियों में जीवित रहती है तथा जिन सामाजिक रूढ़ियों एवं मर्यादाओं के आघात सहन करती चलती है, वह उसके जीवन को करुणामय तो बना देते हैं, परन्तु उनकी प्रतिक्रियाओं एवं क्रियात्मक विद्रोह के अभाव में सामाजिक परिस्थितियों तथा रूढ़ियाँ अपने संपूर्ण आयामों के साथ उभरकर नहीं आ पातीं । इसी कारण उपन्यास एक सामाजिक उपन्यास के स्थान पर मृणाल के 'वैयक्तिक जीवन की त्रासदी बनकर रह गया है ।

पंचम : अध्याय

५.१ उपसंहार

जैनेन्द्र कुमार जी को उपन्यास साहित्य के विकास में भाषा और शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । उन्होंने साहित्य में कलात्मकता के साथ साथ भारतीय सामाजिक तथा राजनैतिक परिवेश की गहरी पकड़ बनाई । अंतर्वृत्ति अथवा शीलवैचित्र्य और उसका विकासक्रम अंकित करने वाले उपन्यास 'गबन' की रचना करने वाले प्रेमचंद जी ने इस धारा के उपन्यासकार श्री जैनेन्द्र कुमार जी के मनोविज्ञान चित्रण पर मुग्ध होकर 'हंस' में लिखा था,

"इनमें अन्तःप्रेरणा और दार्शनिक संकोच का संघर्ष है ।"

जैनेन्द्र कुमार (1905-1988) ने हिन्दी उपन्यास को प्रेमचंद युग में ही नयी दिशा देने का सफल प्रयास किया । उन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य को नई दिशा प्रदान की । उपन्यास को सामाजिक यथार्थ ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक यथार्थ के क्षेत्र में भी प्रवेश करने की राह सुझाई । उन्होंने व्यक्ति की गुम होती पहचान को उभार कर सामने रखा । उनके उपन्यासों में अनमेल विवाह या दहेजप्रथा जैसी समस्याएं नहीं हैं, बल्कि विवाह स्वयं में एक समस्या है । उनके उपन्यासों में मनुष्य जीवन के अनेक नवीन पहलुओं का उद्घाटन हुआ । गांधी जी के जीवन दर्शन से वे प्रभावित थे, परन्तु कहीं भी उन्होंने ऐसा कुछ न लिखा जो उनका स्वयं चिंतित न हो ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं,

"उनकी रचनाओं में नवीन कारीगरी और नवीन उपस्थापन(कौशल को देखकर सहृदयों को आशा हुई कि ये आगे चलकर बड़े साहित्यकार होंगे । यह आशा सत्य सिद्ध हुई ।"

जैनेन्द्र कुमार की रचनाओं में नवीन कारीगरी और नवीन उपस्थापन कौशल देखने को मिलता है । जैनेन्द्र जी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास में मनुष्य जीवन के अनेक नवीन पहलुओं का उद्घाटन हुआ है । उन्होंने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बना कर मानव की शंकाओं, कुंठाओं, विकारों, उलझनों और प्रेम की वैक्तिकता के चित्र

प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराया है । उन्होंने मुक्ति की समस्या पर बल तो दिया है, पर रूढ़ संस्कार उसके आड़े आ जाते हैं । इस तरह से उनके सभी उपन्यास अंतर्विरोधों का उपन्यास बन गए हैं । वे अपने पात्रों को पहेली बना कर छोड़ देते हैं और पाठक उस मनोवैज्ञानिक पहेली को सुलझाने के प्रयत्न में उलझा रह जाता है ।

कहा जा सकता है कि उनके उपन्यास, विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से व्यस्क और संवेदनशील पाठकों के लिए लिखे गए उपन्यास हैं । एक प्रकार से देखा जाए तो नारी उन उपन्यासों की प्रधान समस्या है । इनका पुरुष पात्र इतना आकर्षक होता है कि सब नारियां उसके आसपास मंडरा कर उससे प्रेम करना चाहती हैं । उनके नारी पात्रों में अद्‌भुत महिमा है । उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक मर्यादाओं के बीच अपनी पहचान बनाने वाले नारी पात्रों की सृष्टि की है जो सामाजिक दबावों और व्यक्तिगत आग्रहों के चलते द्वन्द्वग्रस्त होकर आत्मयातना के शिकार हो गये हैं । वे समाज को न तोड़कर, स्वयं टूटते हैं । इनके उपन्यासों में आदमी टूटता है समाज बचता है । मेरा मानना है कि अभी के समय में मनुष्य को थोड़ा और सामाजिक होना है, समाज को थोड़ा और मानवीय होना है । तभी देश की दशा और दिशा संतुलित रह सकती है ।

जैनेन्द्र का विश्वास है कि पीड़ा और व्यथा ही अहं को विगलित करने में समर्थ है । व्यथा का तीव्रतम रूप कामगत यातना में प्राप्त होता है । इसीलिए जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में कामपीड़ा और समर्पण का चित्रण करके अहं का विसर्जन किया । इनकी रचनाओं में 'सुनीता' को पर्याप्त ख्याति मिली है ।

समग्रतः उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जैनेन्द्र का संपूर्ण कथा साहित्य यदि अंतर्जगत् पर केंद्रित भी है, जब भी सामाजिक सांस्कृतिक पक्षों को महत्ता प्रदान करने वाला है । डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है : 'यह सत्य है कि वे जीवन के कटु सत्य से दूर है, उन्होंने पतनोन्मुख मध्यवर्ग का चित्रण किया है, किंतु उन्होंने मन की जिस गहराई में प्रवेश किया है वह समाज की विषमता के कारण ही है ।' इसी कारण उनके उपन्यास और कहानियाँ नए और अजीब ढंग से उपादेय जीवन का चित्रण हमारे समक्ष रख देते हैं । उन्होंने अपने कथा साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक चिंतन की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए युगानुरूप मौलिक उद्‌भावनाएँ कीं, जो समयानुकूल और प्रासंगिक भी हैं तथा नई दिशा की संवाहक भी ।

नारी की विसंगत स्थिति का रेखांकन, समाज का चारित्रिक पतन, मन की उद्दाम लालसाएँ, कुंठित मस्तिष्क आदि विषय उनके कथा साहित्य में छाए रहे, किंतु इन सबसे मुक्त होने का उपाय भी उन्होंने ही दिया, जो कि भारत की सांस्कृतिक परंपरा की समृद्धि का पर्याय है । संस्कृति और समाज से संबद्ध प्रश्न उठाकर उन्होंने जो भी समाधान दिए, वे हमारी संस्कृति की परिधि में ही हैं और उसकी विराट् सत्ता का उद्‌बोधन कराने वाले हैं ।

समष्टि रूप में जैनेन्द्र का कथा साहित्य भारतीय संस्कृति के तत्त्वों को संरक्षण करनेवाला, युगानुरूप परिष्करण करने वाला और भावी साहित्यकारों के लिए मौलिक चिंतन के द्वार खोलने वाला रहा है । साहित्यकार के दायित्व का जैनेन्द्रजी ने निष्ठापूर्वक निर्वहन करते हुए भारतीय सांस्कृतिक गौरव को गतिमान किया, अतः मेरी दृष्टि में वे प्रेमचंद के बाद युगांतरकारी कथाकार माने जाने चाहिए ।

सन्दर्भ ग्रंथ

1'परख' (उपन्यास) जैनेन्द्र कुमार

प्रकाशन(भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली 110003

2 'सुनीता' (उपन्यास) जैनेन्द्र कुमार

प्रकाशन(भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली 110003

3 'त्यागपत्र' (उपन्यास) जैनेन्द्र कुमार

प्रकाशन(भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

4'नारी' (निबंध संग्रह) जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली

5 'भारतीय साहित्य के निर्माता जैनेन्द्र कुमार' गोविन्द मिश्र,

प्रकाशन : साहित्य अकादमी, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली (110001

6 हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

7 हिंदी साहित्य का इतिहास - सं. डा. नगेन्द्र

गुगल पुस्तक, विकीपीडिया स्रोत